दैनिक जागरण
ऊर्जा को सही दिशा में लगाना ही सफलता का सूत्र है

बंगाल का भर्ती घोटाला

कलकत्ता उच्च न्यायालय ने शिक्षकों एवं स्कूली शिक्षा से जुड़े अन्य कर्मियों की भर्ती में घोटाले को सही पाते हुए जिस तरह 25 हजार से अधिक नियुक्तियां रद करने का आदेश दिया, वह बंगाल सरकार के लिए बहुत बड़ा झटका है। यह उन शिक्षकों-कर्मियों के लिए भी आघातकारी है, जिन्होंने रिश्वत या सिफारिश के बिना नौकरी पाई होगी। ऐसे कितने लोग हैं, इसका पता तो हाई कोर्ट के आदेश के अनुपालन के क्रम में होने वाली जांच से ही चलेगा, लेकिन आम चुनाव के मध्य आया यह फैसला ममता बनर्जी का राजनीतिक संकट बढ़ा सकता है। इसलिए और भी, क्योंकि हाई कोर्ट ने नौकरी पाने वालों को वेतन लौटाने का भी आदेश दिया है। इसके अलावा उसने उस पूरे पैनल को रद कर दिया है, जिसकी देखरेख में भर्तियां हुई थीं। हालांकि ममता ने उच्च न्यायालय के फैसले को गलत बताते हुए उसके खिलाफ सुप्रीम कोर्ट जाने को कहा है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि सीबीआइ की जांच वाले इस भर्ती घोटाले में कई नेता और अधिकारी जेल में हैं। इनमें भर्ती प्रक्रिया के समय शिक्षा मंत्री रहे पार्थ चटर्जी भी हैं, जिनकी महिला मित्र के यहां से करोड़ों रुपये की नकदी बरामद हुई थी। इसके अलावा कई शिक्षकों की नौकरी तभी चली गई थी, जब कुछ वर्ष पहले उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने असंतुष्ट अभ्यर्थियों की याचिका की सुनवाई करते हुए भर्ती में धांधली के आरोप को सही पाया था। करीब दस वर्ष पहले शुरू की गई इस भर्ती प्रक्रिया से असंतुष्ट अभ्यर्थी यह शिकायत लेकर उच्च न्यायालय पहुंचे थे कि न केवल कम अंक वालों का नाम सूची में ऊपर कर दिया गया, बल्कि ऐसे आवेदक भी नौकरी पा गए, जिन्होंने परीक्षा नहीं दी थी।

एकल पीठ के फैसले पर तो ममता के पास यह कहने का अवसर था कि फैसला सुनाने वाले जज भाजपा के करीबी हैं। यह सही है कि बाद में वह जज त्यागपत्र देकर भाजपा में शामिल हुए और लोकसभा चुनाव में प्रत्याशी भी बन गए, लेकिन अब तो दो सदस्यीय पीठ ने भी भर्ती में घोटाले की पुष्टि कर दी। देखना है कि ममता सरकार को सुप्रीम कोर्ट से कोई राहत मिल पाती है या नहीं? सुप्रीम कोर्ट को इस मामले की शीघ्र सुनवाई करने के साथ यह भी देखना होगा कि क्या 25 हजार से अधिक सभी अभ्यर्थियों ने गलत तरीके से नौकरी पाई? यदि धांधली में केवल तत्कालीन मंत्री और अधिकारी ही भागीदार पाए जाते हैं, समस्त अभ्यर्थी नहीं, तो फिर ममता बनर्जी के लिए अपनी साख बचाना और कठिन होगा। वैसे यह पहली बार नहीं, जब कोई इतना बड़ा भर्ती घोटाला सामने आया हो और नियुक्त लोगों की नौकरियों पर संकट छाया हो। यह शर्मिंदगी का विषय है कि अन्य राज्यों में भी ऐसे मामले पहले भी सामने आ चुके हैं।

बधाई ! यूपी बोर्ड

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद (यूपी बोर्ड) ने केवल 20 दिनों के भीतर हाईस्कूल और इंटरमीडिएट परीक्षा का परिणाम घोषित करके यह सिद्ध कर दिया है कि पूरी निष्ठा और संकल्पबद्ध होकर कार्य किया जाए तो किसी भी लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है। वर्ष 1923 में यूपी बोर्ड की पहली परीक्षा हुई थी। उसके बाद से यह पहली बार हुआ है कि इतने कम समय के भीतर बोर्ड ने रिजल्ट घोषित किया। केवल यही नहीं, बोर्ड ने सिर्फ 12 दिनों के भीतर ही न केवल हाईस्कूल और इंटर की परीक्षाएं कराईं, बल्कि इतने ही कार्य दिवस में 2 करोड़ 85 लाख से अधिक कापियों का मूल्यांकन भी संपन्न कराया, जबकि वाराणसी के एक शिक्षक की हत्या को लेकर शिक्षकों ने इस बीच कार्य बहिष्कार भी किया। छात्र-छात्राओं के लिए इससे बेहतर बात कुछ और नहीं हो सकती कि उनकी परीक्षा का परिणाम नियत समय पर आ जाए। विशेष तौर पर इंटरमीडिएट के परीक्षार्थियों के लिए यह और भी जरूरी है, क्योंकि उच्च शिक्षा की प्रवेश परीक्षाओं की तैयारी के लिए उन्हें पर्याप्त समय मिल जाता है। यूपी बोर्ड की यह बड़ी उपलब्धि है और यह कार्यसंस्कृति में बदलाव का परिचायक है। शासन और बोर्ड में अधिकारी पहले भी नियुक्त होते थे, लेकिन कार्यसंस्कृति में परिवर्तन अब देखने को मिल रहा है। यूपी बोर्ड माध्यमिक शिक्षा की देश में सबसे बड़ी परीक्षा संस्था है और इसी वर्ष की बात करें तो हाईस्कूल व इंटर की परीक्षा में 51 लाख से अधिक परीक्षार्थी शामिल हुए हैं। ऐसे में नकलविहीन परीक्षा कराना और समय पर रिजल्ट देना बड़ी जिम्मेदारी का कार्य था। समय पर परिणाम देने के बाद बोर्ड को एक निश्चित कैलेंडर पर भी विचार करना चाहिए। जिस दिन कैलेंडर निर्धारित करने में सफलता मिल जाएगा, यूपी बोर्ड सबसे अलग दिखाई देने लगेगा।

छात्रों के लिए इससे बेहतर बात कुछ और नहीं हो सकती कि उनकी परीक्षा का परिणाम नियत समय पर आ जाए

क्या कहता है कांग्रेस का घोषणा पत्र

ए. सूर्यप्रकाश

आखिर कांग्रेस उन अधिकारों को 'अक्षुण्ण' रखने का वादा क्यों कर रही है, जो अधिकार लोगों को पहले से ही मिले हुए हैं?

चुनाव प्रचार अभियान के दौरान घोषणा पत्रों को लेकर भी वाद-विवाद का सिलसिला कायम है। चुनावी वादों को लेकर राजनीतिक दल एक-दूसरे को घेरने में लगे हुए हैं। इनमें विपक्षी दलों के मोर्चे आइएनडीआइए के घटक दल भी हैं, जैसे कि माकपा और कांग्रेस। लोकसभा चुनाव के लिए कांग्रेस ने अपने चुनावी घोषणा पत्र को 'न्याय पत्र' नाम दिया है और अपने चुनाव चिह्न 'हाथ' को हालात सुधारने से जोड़ते हुए 'हाथ बदलेगा हालात' का नारा दिया है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या पार्टी सकारात्मक दिशा में ही देश के हालात बदलेगी? इस प्रश्न की पड़ताल के लिए कांग्रेस का चुनावी घोषणा पत्र बहुत उम्मीदें नहीं जगाता। इसमें अल्पसंख्यक तुष्टीकरण को लेकर किए गए वादों का सामाजिक सौहार्द और भारत की एकता-अखंडता पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है। संविधान के अनुच्छेद-15, 16, 25, 28, 29 और 30 के तहत सभी नागरिकों को अपेक्षित रूप से वे सभी मूल अधिकार प्राप्त हैं, जिनका कांग्रेस अपनी सुविधा से जिक्र कर रही है। फिर भी कांग्रेस मजहबी आस्था आदि के आधार पर विभाजन की बुनियाद रखने पर आमादा है।

कांग्रेस ने 'सार्वजनिक और निजी रोजगार एवं शिक्षा में विविधता के आकलन, निगरानी तथा प्रोत्साहन के लिए' विविधता आयोग बनाने का वादा किया है। कांग्रेस का कहना है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, सरकारी नौकरियों, खेल और सांस्कृतिक गतिविधियों में अल्पसंख्यकों की उचित भागीदारी होनी चाहिए। इसका यही संकेत है कि पार्टी विवादित सच्चर कमेटी की रिपोर्ट को लागू कर निजी क्षेत्र को मजहबी कोटे से भर्तियों के लिए मजबूर करेगी। वह शायद भारतीय क्रिकेट टीम और ओलिंपिक दल में भी अल्पसंख्यकों के लिए कोटे की मांग करे। सच्चर कमेटी ने भारतीय रिजर्व बैंक से यह जानकारी उपलब्ध कराने को कहा था कि वह मुस्लिम इलाकों में बांटे गए ऋण का ब्योरा उपलब्ध कराए। क्या कांग्रेस बैंकों से अल्पसंख्यकों के लिए संस्थागत ऋण मुहैया कराने के लिए भी कहेगी?

कांग्रेस के कार्यकाल में गठित हुई सच्चर कमेटी ने जब 2006 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया तो उसमें सैन्य बलों में मजहबी आधार पर गणना करने का सुझाव भी दिया था। तब उस पर बहुत विवाद हुआ था। स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार ऐसा देखने को मिला कि सैन्य बलों में भी धार्मिक-मजहबी आधार पर विभाजन का प्रयास किया गया। हालांकि इस बार कांग्रेस के चुनावी घोषणा पत्र में इसका कोई स्पष्ट उल्लेख तो नहीं,

अवधेश राजपूत

लेकिन सरकारी नौकरियों में मजहबी अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण का संकेत जरूर है, जो अपने व्यापक स्वरूप में सुरक्षा बलों को भी अपने दायरे में ले सकता है। यह देश की एकता-अखंडता को प्रभावित करने वाला विचार है। प्रतीत होता है कि कांग्रेस ने 'टुकड़े-टुकड़े गैंग' का सिद्धांत अपनाकर विभाजन को बढ़ावा देने का मन बना लिया है।

कांग्रेस ने कहा है कि वह पर्सनल ला में सुधार को प्रोत्साहन देगी, लेकिन उसने यह भी साफ किया है कि ऐसे कोई भी सुधार संबंधित समुदाय की सहमति के बाद ही होने चाहिए। यह हास्यास्पद ही है, क्योंकि मुस्लिम समुदाय हमेशा से अपने पर्सनल कानूनों में सुधारों का विरोधी रहा है और शाहबानो मामले के समय से कांग्रेस आम मुस्लिम समुदाय के हितों की चिंता करने के नाम पर उनके कट्टरपंथी नेताओं के आगे नतमस्तक होती रही है।

अल्पसंख्यकों और सामाजिक मुद्दों के विषय पर भी कांग्रेस का घोषणा पत्र गैर-जिम्मेदार होने के साथ ही दोहरा रवैया प्रदर्शित करने वाला है। कांग्रेस का दावा है कि सत्ता में आने पर वह विवाह, उत्तराधिकार, विरासत, संतान गोद लेना और अभिभावक-संरक्षण जैसे पहलुओं पर महिलाओं और पुरुषों के लिए समान अधिकार सुनिश्चित करेगी। जबकि वह समान नागरिक संहिता का विरोध करती आई है। इस संहिता का उद्देश्य ही सभी समुदायों में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को दूर करना है। उसके इस वादे में भी खोट नजर आती है, क्योंकि मुस्लिम समाज में शरीयत कानूनों के चलते ऐसे मामलों में विषमता कायम है। ऐसा लगता है कि घोषणा पत्र तैयार करने वालों ने बड़ी चतुराई दिखाई है, क्योंकि उसमें तलाक पर कोई चर्चा नहीं, जिसका मुस्लिम महिलाएं सर्वाधिक दंश भुगतती रही हैं।

अपने चुनावी घोषणा पत्र में कांग्रेस ने कुछ गारंटियां देने की बात की है, लेकिन ध्यान से देखा जाए तो संविधान ने ऐसी गारंटियां पहले से ही प्रदान की हुई हैं। पार्टी ने 'विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की बहाली' का वादा किया है, जबकि संविधान के अनुच्छेद-19 में यह मूल अधिकार सभी नागरिकों को प्राप्त है। इसी के आधार पर कांग्रेस पार्टी के नेताओं सहित अन्य तमाम लोग इंटरनेट मीडिया पर प्रधानमंत्री मोदी समेत अन्य भाजपा नेताओं के खिलाफ आए दिन अपशब्दों का इस्तेमाल करते रहते हैं। इस आजादी का इस कदर इस्तेमाल किया जा रहा है कि आइएनडीआइए के कुछ नेता प्रधानमंत्री मोदी को शारीरिक रूप से क्षति पहुंचाने तक का सार्वजनिक आह्वान करने से भी नहीं हिचकते। ऐसे में कांग्रेस कौनसी आजादी बहाल करेगी? इसके बजाय कांग्रेस को अपने और सहयोगी दलों द्वारा शासित राज्यों में लोगों के लोकतांत्रिक अधिकारों को बहाल करने का वादा करना चाहिए, जहां मुख्यमंत्री की आलोचना पर नागरिकों को पीटा और गिरफ्तार किया जाता है।

कांग्रेस ने 'लोगों के शांतिपूर्वक प्रदर्शन और संघ-समूह गठित करने के अधिकार को कायम रखने' का भी वादा किया है। संविधान के अनुच्छेद-19(क)(ख) और 19(1)(ग) पर दृष्टिपात करें तो 1950 में संविधान लागू होने के बाद से ही ऐसे अधिकार नागरिकों को निर्बाध रूप से प्राप्त रहे हैं और 1975-77 की अवधि में निलंबित रहे, जब कांग्रेस शासन के दौरान देश में लागू आपातकाल के दौरान तानाशाही चल रही थी। फिर कांग्रेस के ऐसे वादों में क्या विशेष है? ये सभी तो मूल अधिकारों में आते हैं। ऐसे में कांग्रेस को इन अधिकारों को 'अक्षुण्ण' रखने का वादा करने की जरूरत ही नहीं, क्योंकि ये तो लोगों को पहले से ही मिले हुए हैं।

(लेखक लोकतांत्रिक विषयों के विशेषज्ञ एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)
response@jagran.com

नहीं सुधर रहे हैं सरकारी स्कूल

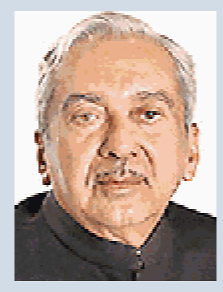

जगमोहन सिंह राजपूत

दिल्ली हाई कोर्ट की सरकारी स्कूलों को लेकर की गई टिप्पणी उनकी दयनीय दशा को ही बयान कर रही

सौ वर्ष पहले महात्मा गांधी ने कहा था कि भारतीयों की खुशी के लिए आशा की एकमात्र किरण है शिक्षा के प्रकाश का सभी तक पहुंचना। उनकी प्राथमिकता में 'पंक्ति के अंतिम छोर पर खड़ा व्यक्ति' ही था, जो आज भी देश में है। इसकी खबरें हर दिन पढ़ने को मिलती हैं। हाल में दिल्ली उच्च न्यायालय ने दिल्ली के सरकारी स्कूलों की स्थिति के संबंध में सब कुछ वही कहा है, जो शिक्षा से जुड़े लोग लगभग हर अवसर पर अपनी चिंता के रूप में व्यक्त करते रहे हैं। टूटी मेज-कुर्सियां, अनुपस्थित अध्यापक, अनेक विषय पढ़ाने को मजबूर शिक्षक जैसी कमियों पर अनेक दशकों से चर्चा होती रही है। दिल्ली सरकार ने स्कूल सुधारों के संबंध में बड़ी घोषणाएं की थीं। उनकी प्रशंसा भी होती रही, लेकिन न्यायालय की टिप्पणी से स्पष्ट हो जाता है कि संभवतः प्रयास पर कम, लेकिन प्रचार-प्रसार पर अधिक जोर था। न्यायालय ने शिक्षा सचिव से कहा कि एक क्लासरूम में 146 बच्चे नामांकित थे, क्या इतने बच्चों के साथ न्याय संभव है? जब दिल्ली में यह स्थिति है तो देश के दूसरों हिस्सों के स्कूलों का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है।

भारत में सरकारी स्कूल व्यवस्था में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे, जहां एक अध्यापक सालों-साल एकमात्र शिक्षक रहा होगा। यह निर्णय तो सरकारें ही लेंगी कि शिक्षा के अवसर भारत में अधिक उपलब्ध हैं या फिनलैंड में, जहां के माडल का अनुसरण करने का दिल्ली सरकार का दावा है। पिछले कुछ वर्षों से दिल्ली में फिनलैंड की शिक्षा व्यवस्था की खूब चर्चा हुई। वहां दिल्ली के कुछ अध्यापकों का प्रशिक्षण भी हुआ। उससे बड़ी उम्मीदें जुड़ीं। दिल्ली उच्च न्यायालय के आकलन के पश्चात भी आशा बनाए रखने के अलावा कोई विकल्प नहीं। हालांकि उम्मीदें अक्सर टूटती हैं, लेकिन हम विचलित नहीं होते हैं। देश के अनेक शहरों में सरकारी स्कूलों में बच्चों के आने-जाने के लिए कोई सरकारी बस सेवा तक नहीं है। आखिर गरीब कामगारों के जो बच्चे केवल इस कारण स्कूल नहीं जा पा रहे हैं, उनके आवागमन की चिंता कौन करेगा? वादा तो निश्शुल्क वाहन व्यवस्था का था।

कस्तूरबा गांधी आवासीय विद्यालयों और कंपोजिट स्कूलों की स्थापना से भी बड़ी आशाएं थीं, लेकिन इन स्कूलों और अन्य सरकारी स्कूलों के निरीक्षण में पाया गया कि कई जगह नामांकन अपेक्षा से अत्यंत कम हैं। एक कंपोजिट स्कूल में कक्षा एक में केवल छह छात्र नामांकित थे, उपस्थित कोई नहीं मिला। इस स्थिति में मध्याह्न भोजन इत्यादि की क्या व्यवस्था रहती होगी? वरिष्ठ अधिकारी ऐसे अवसरों पर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करते हैं, चेतावनी देते हैं और सारा दोष प्राचार्य या अंतरिम प्रभारी पर थोप देते हैं। इस दयनीय स्थिति को परिवहन व्यवस्था से जोड़कर ओझल कर दिया जाता है। दशकों से देश में एक-वर्षीय बीएड पाठ्यक्रम उत्तीर्ण कर स्कूल अध्यापक बन जाना एक बड़े वर्ग के युवाओं के लिए लक्ष्य प्राप्त कर संतोषपूर्ण जीवन बिताने का रास्ता खोल देता था। वे प्राथमिक कक्षाओं से लेकर माध्यमिक तक पढ़ाते थे, जबकि उनका प्रशिक्षण केवल माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ाने के लिए होता था। प्राइमरी अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए भी अलग व्यवस्थाएं थीं। इनमें सुधार और परिवर्तन भी होते रहे। 1986/92 की शिक्षा नीति में हर जिले में केंद्र द्वारा बड़ी सहायता देकर डिस्ट्रिक्ट इंस्टीट्यूट आफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग की स्थापना इस दिशा में बड़ी पहल थी। अब यह निर्णय लिया जा चुका है कि आगे से एक-वर्षीय पाठ्यक्रम समाप्त कर दिए जाएंगे। उच्चतम न्यायालय ने असमंजस की उस स्थिति का निराकरण कर दिया है, जिसमें पहले से प्राथमिक पाठशालाओं में नियुक्त हजारों बीएड उपाधिधारी सेवा से हटाए जाने वाले थे। व्यावसायिक उपाधियों के संबंध में निर्णय भविष्य को ही नहीं, बल्कि अनेक अन्य सामाजिक और आर्थिक पक्षों को ध्यान में रखकर लिए जाने से उनकी स्वीकार्यता और उपयोगिता दोनों ही साथ-साथ संभाले जा सकते हैं।

कागजों तक अधिक सीमित हैं शैक्षिक सुधार। फाइल

भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश जस्टिस जेएस वर्मा ने 2012 में अपनी रिपोर्ट में यह तथ्य रखा था कि देश के 10,000 बीएड कालेजों में प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा। वे वास्तव में डिग्री बेच रहे हैं। इसे 2020 की नई शिक्षा नीति में भी दोहराया गया। उसमें समाधान भी सुझाए गए। वे कितनी गहनता से लागू किए जा सकेंगे, इस पर यही कहा जा सकता है कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षकों के लिए जो चार-वर्षीय प्रशिक्षण प्रारंभ करने की शुरुआत हुई है, वह शिक्षा की गुणवत्ता में अप्रत्याशित वृद्धि कर सकती है। एनसीईआरटी ने अपने चार क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में यह कार्यक्रम प्रायोगिक तौर पर 1964-65 में प्रारंभ किया था। इसमें उत्तीर्ण छात्र-अध्यापक हर जगह सराहे गए। आशा करनी चाहिए कि सभी राज्य सरकारें बिना लाग-लपेट इसे लागू करेंगी और संस्थानों को सभी संसाधन उपलब्ध कराएंगी।

नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन से अनेक आशाजनक संभावनाएं उभरी हैं। इनमें अध्यापक प्रशिक्षण में सुधार भविष्योन्मुखी है। शिक्षा जगत में ऐसा बहुत कुछ है, जिससे छुटकारा पाना आवश्यक है। इसमें सबसे पहले आती है व्यवस्थागत शिथिलता। इसके कारण अधिकांश सुधार केवल कागजों तक रह जाते हैं। यदि शिक्षक प्रशिक्षण पूरी तरह व्यापारियों से मुक्त कराया जा सके, अध्यापकों की नियुक्ति नियमित और समय पर होने लगे तो देश की सकारात्मक ऊर्जा और बौद्धिक संपदा में भारी वृद्धि होगी। ऐसा कर सकने की पूरी क्षमता देश के पास है, बस उसका प्रदर्शन किया जाना चाहिए।

(लेखक शिक्षा, सामाजिक सद्भाव और पंथक समरसता के क्षेत्र में कार्यरत हैं)
response@jagran.com

ऊर्जा

मनोबल

जीवन एक खेल है, जिसकी हार-जीत तो हमारे हाथ में नहीं है, लेकिन उसे खेलना जरूर हमारे नियंत्रण में है। आत्मविश्वासी व्यक्ति हार और जीत की फिक्र किए बिना अपने प्रबल विश्वास से इस खेल में विजयी होता है। जीवन बहुत छोटा है, लेकिन संसार में काम बहुत हैं। ऐसी स्थिति में निश्चयात्मक वृत्ति से अपनी क्षमता बढ़ाई जा सकती है। दृढ़ निश्चय वालों के लिए प्रकृति भी रास्ता बना देती है। सफलता उन्हीं को प्राप्त होती है, जो संशय से परे रहकर अपने लक्ष्य पर अडिग रहते हैं। दूसरों की बातों को गौण करके स्वयं के विश्वास को प्रमुखता देते हैं। स्वयं पर विश्वास ही हमारी जीवन नैया पार लगाने का आधार है।

हम अपनी विवेचना की शक्ति से प्रत्येक स्थिति की समीक्षा कर सकते हैं। विषम स्थिति से निकलने के लिए योजना बना सकते हैं। हमारे पास शक्ति व साधनों की कमी नहीं है, कमी है तो प्राप्त संसाधनों और उपलब्ध शक्ति का आत्मविश्वास से उपयोग करने की। वास्तविकता तो यही है कि हम अपनी क्षमताओं के प्रति सजग ही नहीं रहते। उत्पादक शक्ति का नियम है कि किसी भी कार्य में तथा उसे करने के लिए हमारे मनोभावों में बड़ा गहरा संबंध होता है। एक लोकोक्ति है कि धुन के पक्के आदमी के लिए हर काम आसान है।

विश्वास का स्रोत हमारा मन है और मन में स्थित हमारी आत्मशक्ति हमें ऊर्जा देती है। ऐसे में हम जिस कार्य को दृढ़तापूर्वक करें तो वह निश्चित रूप से सफल होगा। मनोविज्ञान का भी कहना है कि हमें वही काम करना चाहिए, जिसे लेकर हमें अपनी क्षमता पर विश्वास हो। जैसे चिकित्सक और औषधि पर विश्वास है तो प्रभाव भी दोगुना दिखता है। वैसे ही आत्मविश्वास जाग उठे तो असहाय और अशक्त प्राणी भी असंभव लगने वाले कार्यों में सफलता प्राप्त कर दिखाते हैं। मनोबल जितना अधिक होगा, उतना हमारा संबंध आत्मा की अनंत शक्ति के साथ गहरा होता जाएगा।

डा. निर्मल जैन

मनुष्य का सबसे अच्छा दोस्त

नृपेंद्र अभिषेक नृप

विश्व पुस्तक दिवस

पुस्तकें लोगों के व्यक्तित्व को निखारती है और उनके दृष्टिकोण में भी बदलाव लाती है

हमारे जीवन में सभ्यता के साथ सबसे प्राचीन बहुमूल्य वस्तु जो अस्तित्व में आई, वह किताब थी। पुस्तकें हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, क्योंकि पुस्तकों से हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है। पुस्तकें हमारी अच्छी मित्र होती हैं। ऐसा वफादार और कोई मित्र नहीं हो सकता है। किताबें हमें ज्ञान देती हैं और उस ज्ञान को जीवन की परिस्थितियों में सही तरह से लागू करने की तरकीब भी सिखाती हैं। किताबें पढ़कर हम प्राचीन संस्कृति से अवगत भी होते हैं और भविष्य की रूपरेखा को भी समझ पाते हैं। किताबें सभ्यता की वाहक हैं। किताबों के बिना इतिहास मौन है, साहित्य गूंगा है, विज्ञान अपंग है, विचार और अटकलें स्थिर है।

वर्तमान समय में स्वयं को हर हाल में आगे बढ़ाने का हुनर भी किताबें हमें सिखाती हैं। सुख-दुख दोनों में सदैव साथ निभाने वाली ये किताबें हमारे जीवन का अभिन्न अंग हैं। किताबों में कही गई बातें, किस्से और कहानियां हमें प्रेरित करते हैं और हम कुछ नया एवं बेहतर करने के लिए प्रेरित महसूस करते हैं। महापुरुषों की जीवनियां, सफल लोगों के संघर्ष की कहानियां पढ़कर हम प्रयास करने के लिए उत्साहित होते हैं और बेहतर परिणाम प्राप्त करना कहीं ज्यादा आसान हो जाता है।

पुस्तक केवल हमें ज्ञान ही नहीं प्रदान करती, बल्कि कई बार हमारे खाली समय को रोचक भी बनाती है, क्योंकि ऐसी कई सारी पुस्तकें हैं जो हमें कई जगहों की जानकारियां देती हैं, जिन्हें पढ़ कर ऐसा लगता है जैसे हम अपना समय वहीं पर बिता रहे हैं, जिसके बारे में पुस्तक में पढ़ रहे हैं। ऐसी पुस्तकों से हमें नई जगह की तो जानकारी होती ही है, खाली समय भी मजे से कट जाता है। पुस्तकों की प्रासंगिकता सदैव कायम रहती है। पुस्तकों के लिए कहा जाता है कि लेखक मर जाता है, लेकिन उसकी पुस्तकें जीवित रहती हैं। बहुत सी प्राचीन पुस्तकों को लिखने वालों का निधन हो गया, लेकिन उनके द्वारा लिखी गई पुस्तकें आज भी जीवित हैं और हमारा मार्गदर्शन करती हैं।

पुस्तकें पढ़ने से हमें काफी लाभ होता है। यह तनाव से मुक्ति देने में भी सहायक है। रोजमर्रा की जिंदगी इतनी तेजी से बदल रही है कि लोगों के पास समय नहीं रहता है कि पुस्तकों का अध्ययन कर सकें, इसके बावजूद हमें पुस्तकों के लिए समय निकालना चाहिए। किताबें वो कीमती पल देने में सहायक होती हैं, जिनमें आदमी पूरी तरह से अपने पास रह सके। अपनी रुचि की किताब पढ़ते हुए बहुत आसानी से कुछ पल के लिए जिंदगी के अनसुलझे मसलों से छुटकारा पाया जा सकता है। तनाव मुक्त हो जाने से दिमाग में एक नई ऊर्जा महसूस होती है, जो नए सिरे से किसी काम को आरंभ करने के लिए बहुत ही आवश्यक है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

खुद बनें पर्यावरण प्रहरी

'गहराता जा रहा है धरती का संकट' शीर्षक से लिखे आलेख में रमन कांत ने इस समस्या पर व्यापक प्रकाश डाला है। यह चिंता का विषय है कि आज जब हम पर्यावरणीय नुकसान से अवगत हैं, उसके बावजूद मानव व्यवहार में वैसा बदलाव देखने को नहीं मिल रहा है, जो पर्यावरण हितैषी हो। जनसंख्या निरंतर बढ़ रही है। उनके लिए उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ रहा है। उपभोग की प्रवृत्ति के कारण प्रत्यक्ष और परोक्ष तौर पर जीवाश्म ईंधन की अधिक खपत हम कर रहे हैं। पारिस्थितिकी तंत्र के अनुरूप खेती-किसानी अपनाने को तैयार नहीं हैं। आखिर कब तक हम पर्यावरण से खिलवाड़ करते रहेंगे? क्या पर्यावरण की रक्षा करना मात्र सरकार या पर्यावरण संगठनों की जिम्मेदारी है? हमारे दैनंदिन व्यवहार से पर्यावरण की सुरक्षा हो सकती है। इस बार पृथ्वी दिवस की थीम ही 'धरती बनाम प्लास्टिक' है। प्लास्टिक आज हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा है। इसका सहज प्रतिस्थापन संभव है। जैसे बाजार जाते समय कपड़े का थैला साथ रखें। ऐसे और भी कदम बहुत उपयोगी हो सकते हैं।

मुकेश कुमार मनन, पटना

इंटरनेट मीडिया का सही उपयोग

मीडिया का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है लोगों तक सच्ची और सटीक सूचना पहुंचना, लेकिन वर्तमान संदर्भ में देखें तो इंटरनेट मीडिया में एक खास वर्ग लोगों को यह बताने में लगा है कि उन्हें क्या सोचना है और कैसे सोचना है। समाचार को समाचार की तरह नहीं, बल्कि यह वर्ग उसे अपने निजी विचारों के साथ मिलाकर परोस रहा है और इसका परिणाम यह है कि इंटरनेट मीडिया फर्जी खबरों और डीपफेक कंटेंट से पटा पड़ा है। 'चुनावों में विदेशी हस्तक्षेप का खतरा' शीर्षक से प्रकाशित शशि शेखर वेम्पति के आलेख में उचित ही कहा गया है कि सरकार की फैक्ट्स चेक यूनिट्स को प्रभावकारी उपकरणों और व्यापक क्षमता से लैस करके उन्हें सशक्त बनाना अत्यंत आवश्यक है। पर ऐसा क्यों है कि स्वास्थ्य, शिक्षा और सुरक्षा जैसे गंभीर विषयों पर भी सरकार और सरकारी कर्मचारी कछुए की धीमी गति में कार्य करते हैं? ऐसे में यह अत्यंत आवश्यक है कि चुनाव आयोग पुराने ढर्रे पर काम करने की बजाय कोई ठोस कदम उठाए। एक बड़ी समस्या यह भी है कि देश की अधिकतर जनता डीपफेक, वायस क्लोनिंग आदि तकनीक से अनभिज्ञ है। लोगों को तो यह भी नहीं पता चल रहा कि इंटरनेट मीडिया के द्वारा प्रसारित जो भी फर्जी सामग्री वे ग्रहण कर रहे हैं, वे उनके स्वयं के विचारों को प्रभावित कर रही हैं। इसलिए लोगों को यह समझना होगा की इंटरनेट मीडिया पर जो भी दिखाया जाता है, वो सब सच नहीं होता।

सोनल वर्मा, प्रयागराज

प्लास्टिक से नुकसान

संपूर्ण विश्व में 22 अप्रैल को पृथ्वी दिवस का आयोजन किया जाता है। इसी पर आधारित एक लेख सोमवार को प्रकाशित किया गया है। रमणकांत लिखित यह लेख प्रकृति के साथ किए जा रहे जुल्म के अनेक दुष्परिणाम हाल में अनेक जगहों पर देखे गए हैं। पाकिस्तान से लेकर दुबई तक इसके दुष्प्रभाव की विस्तृत चर्चा हो रही है। ऐसे में सरकारों और पर्यावरणविदों के साथ ही देश के नागरिकों को भी पृथ्वी को सही सलामत रखने हेतु आगे आना पड़ेगा। प्लास्टिक के उपयोग को रोकने हेतु जो प्रयास अभी तक किए गए हैं वे केवल आदेश के रूप में कागज पर ही दिख रहे हैं। यदि मानव स्वास्थ्य और जीव-जंतुओं को प्लास्टिक से हो रहे नुकसान से बचाना है तो सभी को आगे आना होगा। यह भी जरूरी हो गया है कि प्लास्टिक के उपयोग के स्थान पर इसके किसी बेहतर विकल्प को तलाशा जाए। प्लास्टिक का कचरा जब नष्ट किया जाता है तो जो केमिकल समुद्र में जाकर मिलता है, वह समुद्री जीवों के लिए बहुत ही घातक होता है। ऐसे में इन समुद्री जीवों में प्लास्टिक केमिकल के दुष्प्रभाव से संक्रमण और प्रजनन पर भी असर होता है।

डा. प्रदीप कुमार संघवी, झाबुआ, मध्य प्रदेश

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।

****

प्रवाह

महोत्सव विश्वास का 75
निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक
स्थापना वर्ष : 1948

यदि आप वास्तव में प्रकृति से प्यार करते हैं, तो आपको हर जगह सुंदरता मिलेगी। -लॉरा इंगल्स वाइल्डर, अमेरिकी लेखिका

युवाओं के भविष्य के साथ खिलवाड़ करने वाले करीब आठ वर्ष पुराने शिक्षक भर्ती घोटाले पर कलकत्ता उच्च न्यायालय का जो कड़ा फैसला आया है, वह पश्चिम बंगाल की ममता बनर्जी सरकार के लिए एक बड़ा झटका है, लेकिन इसके लिए सत्ता के अगुआ कोई कम जिम्मेदार नहीं हैं।

असली गुनहगार

देश में चल रहे आम चुनावों की सरगर्मियों के बीच शिक्षक भर्ती घोटाले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने जो फैसला सुनाया है, वह ममता बनर्जी सरकार के लिए बड़ा झटका है, लेकिन इसके लिए सत्ता के अगुआ कोई कम जिम्मेदार नहीं हैं। अपने कड़े फैसले में अदालत ने न सिर्फ 2016 में पश्चिम बंगाल स्कूल सेवा आयोग द्वारा गठित पैनल को रद्द किया है, बल्कि यह निर्देश भी दिया है कि अवैध रूप से भर्ती किए गए शिक्षकों को चार हफ्ते के भीतर पिछले सात-आठ साल का वेतन ब्याज सहित लौटाना होगा। इस मामले में दीदी बेशक कह चुकी हों कि वह भ्रष्टाचार बर्दाश्त नहीं करेंगी, और दोषी ठहराए जाने वाले लोगों को उम्रकैद तक देने की वकालत भी वह करती आई हों, लेकिन हकीकत तो यह है कि 2014-16 के दौरान जब शिक्षकों की भर्ती प्रक्रिया चल रही थी, तभी इसमें भारी गड़बड़ी की शिकायतें सामने आने लगी थीं। उस वक्त करीब साढ़े चौबीस हजार रिक्त पदों को भरने के लिए 23 लाख से ज्यादा विद्यार्थियों ने परीक्षा दी थी। बाद में उच्च न्यायालय में शिकायतें पहुंचीं कि जिन उम्मीदवारों का नाम मेरिट लिस्ट में नहीं था, उन्हें भी नौकरी दी गई। कई अभ्यर्थी तो शिक्षकों की भर्ती के लिए आवश्यक मानी जाने वाली टीईटी परीक्षा उत्तीर्ण किए बगैर ही कथित तौर पर शिक्षक बना दिए गए। कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्देश पर जब सीबीआई ने इसकी जांच शुरू की थी, तब भी ममता ने तत्कालीन शिक्षा मंत्री पार्थ चटर्जी के खिलाफ कोई कदम उठाना जरूरी नहीं समझा। पार्थ चटर्जी को तो मंत्रिमंडल से 2022 में तब हटाया गया, जब उनकी करीबी अर्पिता मुखर्जी के कोलकाता स्थित घरों से प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) को करोड़ों रुपये नकदी व आभूषण मिले थे। यह घोटाला किस स्तर पर हुआ, इसकी कल्पना इस तथ्य से की जा सकती है कि पार्थ चटर्जी कोई मामूली मंत्री नहीं थे, वह ममता बनर्जी के करीब चार दशक पुराने सहयोगी थे, तृणमूल कांग्रेस के शुरुआती सदस्यों में से थे और सरकार व संगठन, दोनों ही जगह तृणमूल सुप्रीमो के बेहद विश्वसनीय लोगों में से थे। बेशक राजनीतिक भ्रष्टाचार कोई नई चीज नहीं है, जैसा कि आरोपित सांसदों और विधायकों की सूची देखकर समझा जा सकता है। पर इस पूरे घोटाले में तो यही दिखा कि ममता बनर्जी ने सार्वजनिक जीवन की शुचिता से कहीं अधिक तवज्जो राजनीतिक बिसात पर अपने किले को बचाने को दी। दीदी बेशक उच्च न्यायालय के फैसले के खिलाफ शीर्ष अदालत जाने की बात कर रही हों, लेकिन यह तय है कि संदेशखाली के बाद विपक्षी दलों को ममता सरकार को घेरने का एक और बड़ा मुद्दा मिल गया है। असल गुनहगार वह व्यवस्था है, जिसमें करीब 24 हजार युवा अपने भविष्य को अधर में देख रहे हैं।

सियाचिन पर पूर्ण प्रभुत्व के चालीस साल

चालीस साल पूर्व इसी महीने भारतीय सेना ने सियाचिन ग्लेशियर पर अपना पूर्ण प्रभुत्व कायम किया था। यदि भारत शांति के वादे के लिए अपने वीर सैनिकों द्वारा हासिल इस मुश्किल बढ़त को त्याग देता है, तो यह 1972 के विनाशकारी शिमला समझौते के समान होगा।

चालीस वर्ष हो गए, जब दुनिया की सबसे ऊंची व ठंडी चोटी और संभवतः सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण सीमा रेखा पर पाकिस्तानी कब्जे को रोकने के लिए भारतीय सेना के पहले जत्थे को सियाचिन ग्लेशियर स्थित चौकी पर भेजा गया था। आखिर क्यों भारत और पाकिस्तान सियाचिन के पीछे पड़े थे? साफ है कि दोनों पक्षों के सीमा संबंधी दावे के अलावा भी बहुत कुछ था।

असल में, पाकिस्तानी 1960 के दशक में चीन में रची गई एक योजना पर काम कर रहे थे, जिसमें न केवल अक्साई चिन के उत्तरी हिस्सों को जोड़ना था, बल्कि 10 करोड़ एकड़ जमीन में ताजे पानी के स्रोतों (जो सियाचिन के पास हैं) का दोहन करना था, जिसकी चीन और पाकिस्तान को बेहद जरूरत थी। पाकिस्तान को अधिक बांधों और पनबिजली (बिजली) के लिए, जबकि चीन को माइक्रोचिप दिग्गज बनने के लिए। 30 सेमी वर्ग शीट सिलिकॉन वेफर्स बनाने के लिए 10,000 लीटर ताजा पानी को रेगिस्तानी रेत और रसायनों के साथ मिलाया जाता है। और उस क्षेत्र में बहुत सारे ग्लेशियर हैं, जिसे पाकिस्तान ने फरवरी-मार्च, 1963 में चीन को सौंप दिया था।

मारूफ रजा
रणनीतिक विश्लेषक

सियाचिन शक्सगाम घाटी और अक्साई चिन के बीच है। इसलिए यह भारत के लिए रणनीतिक रूप से बेहद फायदेमंद है। कई लोग पहले इसके रणनीतिक महत्व को नहीं समझते थे, बस इसे अपनी भूमि मानते थे। सियाचिन ग्लेशियर के आसपास बर्फीली ऊंचाइयों पर भारत की सैन्य उपस्थिति अप्रैल, 1984 में भारत के तत्कालीन उत्तरी सेना कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल छिब्बर की सिफारिशों पर सरकारी अनुमति से शुरू की गई थी। लेकिन 'क्षेत्र का रणनीतिक महत्व तब भी उतना ज्यादा नहीं था', न ही हमारा उद्देश्य किसी क्षेत्र पर कब्जा करना था। 'यह केवल यह सुनिश्चित करने के लिए था कि हमारे साथ वैसा कुछ न हो, जैसा कि पचास के दशक की शुरुआत में अक्साई चिन में हुआ था', क्योंकि 1962 के चीनी आक्रमण के बाद से नई दिल्ली अपनी सीमाओं के पास मानचित्र संबंधी अस्पष्टताओं के प्रति काफी संवेदनशील रही है। वास्तव में सियाचिन पर विवाद मानचित्र संबंधी विवाद से उत्पन्न हुआ है। आज जिसे नियंत्रण रेखा कहा जाता है, वह 1949 में संघर्ष विराम रेखा थी। वास्तविक सीमा रेखा जम्मू के उत्तर से शुरू होकर एनजे 9842 नामक पर्वत की ऊंचाई पर अचानक समाप्त होती है। इसके अलावा, भारत-पाकिस्तान के बीच 1949 की कराची संधि और 1972 की सुचेतगढ़ संधि के अनुसार, ग्लेशियर नो मैन्स लैंड है। लेकिन 1970 के दशक से कई मानचित्रों में सियाचिन ग्लेशियर को पाकिस्तान के हिस्से के रूप में दिखाया जाने लगा था। इन सभी में संघर्ष विराम रेखा (अब एलओसी) स्पष्ट रूप से एनजे 9842 से उत्तर-पूर्व दिशा में काराकोरम दर्रे और चीनी सीमा तक फैली हुई दिखाई देती है। ऐसा तब तक पाकिस्तानी मानचित्रों में भी नहीं था!

जाहिर है, यह भ्रम कुछ मानचित्रों से पैदा हुआ है, जो शुरू में अमेरिकी रक्षा मानचित्रण एजेंसी द्वारा तैयार किए गए थे, जिसमें 1970-80 के दशक में एनजे 9842 पूर्वोत्तर के आसपास से काराकोरम दर्रे तक चलने वाली एलओसी को दर्शाया गया था। लगता है कि अमेरिका के मानचित्र निर्माताओं द्वारा यह गलती वायु रक्षा सूचना क्षेत्र के चिह्नों को एक सीमा रेखा के रूप में 'अनुवाद' करने के कारण हुई, जो नागरिक/सैन्य विमानन में हवाई यातायात नियंत्रकों के लिए क्षेत्रीय सीमाएं प्रदान करता है।

इससे यह भ्रम हुआ कि नियंत्रण रेखा का विस्तार एनजे 9842 से काराकोरम दर्रे तक हो गया और इस तरह यह पाकिस्तानियों की दिलचस्पी का विषय बन गया। हालांकि, ऐसे कई वायु रक्षा सूचना क्षेत्र हो सकते हैं, जो एक देश से होकर गुजर सकते हैं, पर ये राष्ट्रीय सीमा रेखाएं नहीं हैं। लेकिन दुनिया के कई प्रमुख एटलस द्वारा ऐसे मानचित्रों के प्रकाशन ने पाकिस्तानी सेना को एनजे 9842 से परे नियंत्रण रेखा पर विवाद के लिए प्रोत्साहित किया, और यहीं पर सियाचिन क्षेत्र स्थित है।

शुरू में जनरल जिया-उल-हक के शासन में महत्वाकांक्षी सैन्य कमांडरों द्वारा उकसाए जाने पर पाकिस्तान ने सियाचिन ग्लेशियर के आसपास की हिमनद ऊंचाइयों पर कब्जा करने की योजना बनाई। लेकिन साल्टोरो रिज पाकिस्तान के दुस्साहस के खिलाफ हमारी रक्षा दीवार है। प्रारंभिक चरण में सियाचिन ग्लेशियर की पश्चिमी दीवार पर कब्जे की कोशिश में सैकड़ों लोग हताहत हुए। हालांकि भारतीय सेना ने वायुसेना की मदद से अपना कब्जा बरकरार रखा। वर्ष 1984 से 1987 तक हमारी सेना ने इसके लिए लड़ाई लड़ी और ऊंचाई पर नियंत्रण करके सियाचिन ग्लेशियर पर अपना पूर्ण प्रभुत्व जमाया। इसने पाकिस्तान को हैरान कर दिया और उसने भारतीय सेनाओं को वहां से हटाने की कई कोशिशें कीं, लेकिन वे विफल रहे। अब वे 1983 से पहले की स्थिति में लौटने की बात कर रहे हैं, क्योंकि पाकिस्तानी सेना को सार्वजनिक रूप से शर्मिंदगी झेलनी पड़ रही है। और अब चूंकि पाकिस्तानी सेना साल्टोरो रिज पर भारतीय सैनिकों के कब्जे को वापस हटा नहीं सकती, इसलिए उसके सैनिकों को निचली घाटी में डेरा डालना होगा। हालांकि उसके सैन्य अधिकारियों ने 40 वर्षों से सियाचिन ऑपरेशन को लेकर अपने झूठ को फैलाया है। पाकिस्तानी मीडिया के एक वर्ग ने कहा कि भारत ग्लेशियर पर अपने सैनिकों को रखने का खर्च वहन नहीं कर सकता, जबकि भारत आसानी से खर्च वहन कर रहा है। सियाचिन में सैनिकों को रखने के लिए प्रति वर्ष लगभग 2,000 करोड़ रुपये की लागत भी भारत के रक्षा बजट का एक छोटा-सा हिस्सा है।

मुख्य रूप से भारत-पाक वार्ता के लिए भारत की शर्त है कि पाकिस्तान को भारतीय सैनिकों द्वारा ग्लेशियर के किनारे हासिल की गई बढ़त को स्वीकार करना चाहिए और किसी भी सेना की वापसी से पहले 110 किलोमीटर लंबी एक्चुअल ग्राउंड पोजिशन लाइन (एजीपीएल) को स्वीकार करना चाहिए। कारगिल अनुभव के बाद भारतीय सेना अब पाकिस्तान से मजबूत गारंटी चाहती है, जिसमें भारतीय सेना की स्थिति का सत्यापन, ग्लेशियर के साथ भारत के सैन्य बढ़त की पुष्टि करने वाले मानचित्रों पर हस्ताक्षर शामिल हैं। लेकिन पाकिस्तानी ऐसा करने को तैयार नहीं हैं। यदि भारत शांति के वादे के लिए अपने वीर सैनिकों द्वारा हासिल इस मुश्किल बढ़त को त्याग देता है, तो यह 1972 के विनाशकारी शिमला समझौते के समान होगा।

edit@amarujala.com

जीवन धारा

दलाई लामा

सकारात्मक कार्य हमें सदैव आंतरिक शक्ति प्रदान करते हैं। यह आंतरिक शक्ति ही है, जो हमारे डर को कम करती है और आत्मविश्वास बढ़ाती है और यही आत्मविश्वास दूसरों की मदद करने की हमारी भावना को बढ़ाता है।

खुश रहना है, तो अपने भीतर करुणा पैदा करें

मनुष्य के रूप में हम सभी में खुश और दयालु होने की क्षमता है। साथ ही, हम में दूसरों को दुख पहुंचाने की क्षमता भी है। यदि हम खुश रहना चाहते हैं, तो महत्वपूर्ण बात यह है कि हम सकारात्मक और उपयोगी पहलुओं को बढ़ावा देने और नकारात्मकता को कम करने का प्रयास करें। नकारात्मक कर्म तत्काल संतुष्टि तो दे सकते हैं, लेकिन दीर्घावधि में ये हमारे लिए हमेशा दुख ही लेकर आते हैं। सकारात्मक कार्य हमें सदैव आंतरिक शक्ति प्रदान करते हैं। यह आंतरिक शक्ति ही है, जो हमारे डर को कम करती है और आत्मविश्वास बढ़ाती है और यही आत्मविश्वास दूसरों की मदद करने की हमारी भावना को बढ़ाता है। इसलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम अपनी अच्छी और बुरी, दोनों क्षमताओं को पहचानें। सवाल है कि गहरे मानवीय मूल्यों की समझ को बढ़ावा कैसे दिया जाए। यह गहरा मानवीय मूल्य करुणा, देखभाल की भावना और प्रतिबद्धता है। बिना इसके आप खुश नहीं रह सकते।

करुणा और मानवीय स्नेह की जरूरत हमें केवल जीवित रहने के लिए ही नहीं है, बल्कि ये तो जीवन में सफलता और खुशी के स्रोत हैं। करुणा और प्रेम को सकारात्मक विचारों और भावनाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो जीवन में आशा, साहस, दृढ़ संकल्प और आंतरिक शक्ति जैसी आवश्यक चीजों को जन्म देते हैं। बौद्ध परंपरा में करुणा और प्रेम को एक ही चीज के दो पहलुओं के रूप में देखा जाता है। करुणा दूसरे प्राणी की पीड़ा से मुक्त होने की इच्छा है और प्रेम यह चाहता है कि उन्हें खुशी मिले।

हर प्रकार के सुख और दुख को दो श्रेणियों में विभाजित करना संभव है। ये हैं- मानसिक और शारीरिक। इन दोनों में से यह मन ही है, जो सबसे ज्यादा प्रभाव डालता है। जब तक हम गंभीर रूप से बीमार न हों या बुनियादी जरूरतों से वंचित न हों, हमारी शारीरिक स्थिति जीवन में गौण भूमिका निभाती है। यदि शरीर संतुष्ट है, तो हम असल में इसे अनदेखा कर देते हैं। हालांकि मन हर घटना को दर्ज करता है, चाहे वह कितनी भी छोटी क्यों न हो। इसलिए हमें शारीरिक आराम के बजाय मानसिक शांति लाने के लिए सबसे ज्यादा और गंभीर प्रयास करने चाहिए। निरंतर प्रशिक्षण के माध्यम से हम वास्तव में सकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ा सकते हैं। इससे नकारात्मकता अपने आप कम होने लगेगी। चेतना का एक क्षण भी कई कारकों पर निर्भर करता है और जब हम इन विभिन्न कारकों को बदलते हैं, तो मन भी बदल जाता है।

दूसरों के दुख को याद करने से, दूसरों के प्रति दया महसूस करने से हम अपना दुख कम कर सकते हैं। हर नए अनुभव के साथ हम धीरे-धीरे दयालु बनने का प्रयास कर सकते हैं, दूसरों की पीड़ा के प्रति सच्ची सहानुभूति और उनके दर्द को दूर करने में मदद करने की इच्छाशक्ति विकसित कर सकते हैं। इससे हमारी शांति और आंतरिक शक्ति बढ़ेगी।

दूसरों का दर्द भी अपना समझें...

सूत्र

दूसरों के दुख को याद करने से, दूसरों के प्रति दया महसूस करने से हम अपना दुख कम कर सकते हैं। इस प्रकार, हर नई बाधा को हमारे दिमाग को बेहतर बनाने के एक और नए व मूल्यवान अवसर के रूप में देखा जा सकता है, साथ ही हमारी करुणा को गहरा करने के एक और अवसर के रूप में भी।

दूसरा पहलू

तेरह साल पहले एक सारस को मछुआरे ने जाल से मछली निकालकर खाने को दी, तबसे दोनों की दोस्ती कायम है।

एक सारस, एक मछुआरा और तेरह साल की दोस्ती

तेरह साल पहले तुर्किये के छोटे-से गांव का एक गरीब मछुआरा झील से अपना जाल निकाल रहा था, तभी उसने एक आवाज सुनी। मुड़कर देखा, तो एक सारस आकर उसकी नाव पर बैठा था। मछुआरे ने अनेक सारस देखे थे, लेकिन कभी इतने नजदीक से नहीं देखा था। उसे लगा कि सारस भूखा होगा। वह जाल से निकालकर सारस को मछली देता गया और वह खाता गया।

इस तरह मछुआरे अदम इल्मज और सारस में दोस्ती हो गई। हालांकि शुरू-शुरू में अदम ने इसे गंभीरता से नहीं लिया। लेकिन जब सारस लगातार आता रहा, तो उसे खुशी हुई। फिर एक स्थानीय फोटोग्राफर ने इन दोनों की तस्वीरें सोशल मीडिया में डालनी शुरू कीं, जिससे इनकी जोड़ी पूरे देश में मशहूर हो गई। इस सारस को यारेन नाम दिया गया, तुर्किये की भाषा में इसका अर्थ होता है साथी। अदम कहते हैं कि पहले साल वह सारस न सिर्फ उसकी नाव पर आता रहा, बल्कि शीत ऋतु में दक्षिण की ओर प्रवास करने के बावजूद अगले वसंत में उसी गांव में, उसी घोंसले में, और अदम की नाव पर लौटा। अदम के गांव में सारस लंबे समय से घोंसले बनाते रहे हैं। गांव के बुजुर्ग बताते हैं कि कभी इस गांव के हर घर में सारस घोंसले बनाते थे।

बेन हबर्ड

बच्चों की एक किताब में इनकी दोस्ती पर एक अध्याय है, तो इन पर बनी एक डॉक्यूमेंटरी पुरस्कृत हो चुकी है। एक फिल्म भी इसी साल आनेवाली है, जिसमें अदम ने भूमिका निभाई है।

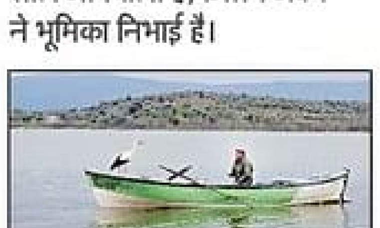

सारस से दोस्ती के कारण अदम तो मशहूर हुए ही हैं, तुर्किये में सारस के लिए बेहतर माहौल बनाने से लेकर पर्यटन क्षेत्र को आगे बढ़ाने के भी निरंतर प्रयास हो रहे हैं।

1980 में भी इस गांव में 41 घोंसले थे, जिनमें 82 सारस रहते थे। फिलहाल इस गांव में यारेन के घोंसले समेत चार घोंसले हैं। लेकिन गांव वाले कहते हैं कि अदम और यारेन जैसी दोस्ती पहले कभी नहीं देखी गई। स्थानीय लोग इस पक्षी को पसंद करते हैं, क्योंकि वसंत के आते ही सारस का आना शुरू हो जाता है। विगत फरवरी में यारेन जब लगातार तेरहवें साल अदम की नाव पर आया, तब स्थानीय मीडिया ने बहुत उत्साहपूर्वक इसे कवर किया।

इस दोस्ती ने 70 साल के अदम को प्रसिद्धि तो बहुत दी, लेकिन उसकी आर्थिक स्थिति नहीं बदली। बच्चों की एक किताब में इनकी दोस्ती पर एक अध्याय है, तो इन पर बनी एक डॉक्यूमेंटरी पुरस्कृत हो चुकी है। एक फिल्म भी इसी साल आनेवाली है, जिसमें अदम ने भूमिका निभाई है। सारस से दोस्ती के कारण अदम तो मशहूर हुए ही हैं, तुर्किये में सारस के लिए बेहतर माहौल बनाने से लेकर पर्यटन क्षेत्र को आगे बढ़ाने के भी निरंतर प्रयास हो रहे हैं। इस दोस्ती ने अदम के गांव को भी, जिसमें 235 लोग रहते हैं, मशहूर कर दिया है, क्योंकि अब काफी पर्यटक भी आने लगे हैं।

-साथ में शफक तिमूर।

आंकड़े

प्रति व्यक्ति जीडीपी

भले ही हम पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गए हैं, लेकिन प्रति व्यक्ति जीडीपी के मामले में चीन और बांग्लादेश से भी पीछे हैं।

चीन	12,510
इंडोनेशिया	4,940
बांग्लादेश	2,620
भारत	2,500
पाकिस्तान	1,460

आंकड़े डॉलर में, मौजूदा मूल्य पर-2023 | स्रोत:IMF

पुण्य ने अपने भाई पावन को समझाया, शरीर तो वस्त्र की तरह है, आत्मा अनेक शरीर बदलती रहती है, उसके लिए दुख कैसा!

आत्मज्ञान की प्राप्ति

अंतर्यात्रा
संकलित

महेंद्र पर्वत पर गंगा के सुरम्य तट पर दीर्घतपस नाम के एक ब्राह्मण अपनी धर्मपत्नी सहित रहते थे। दीर्घतपस धार्मिक और ईश्वरपरायण थे। उनके दो पुत्र थे। बड़े का नाम पुण्य और छोटे का नाम पावन रखा गया। पुण्य बड़ा तपस्वी था। थोड़े ही समय में उसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया। वह निष्काम भावना से सांसारिक कर्तव्यों का पालन करता। पावन शिक्षित और सुशील था, किंतु उसे आत्मबोध न हुआ।

एक दिन दीर्घतपस का देहांत हो गया, उससे पुण्य तो परेशान नहीं हुआ, पर पावन कई दिनों तक रोता रहा। कुछ दिन में माता का भी देहावसान हो गया, तो पावन पर मानो वज्रपात ही हो गया। उसने कई दिनों तक अन्न भी ग्रहण नहीं किया। पुण्य ने माता-पिता, दोनों का संस्कार किया। एक दिन पुण्य ने पावन को समझाया -'हमारे माता-पिता ने इस लोक में धर्म और पुण्य अर्जन किया, सो वे जीवन मुक्त हो गए। शरीर तो वस्त्र की तरह है, आत्मा अनेक शरीर बदलती रहती है, उसके लिए दुख कैसा!'

इतना समझाने पर भी पावन को बोध न हुआ, तो पुण्य ने योग-दृष्टि से उसे उसके कई जन्मों का हाल दिखाया। सौ जन्मों में अनेक योनियों का विवरण देखकर पावन का मोह छूटा और तब उसे आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई।

(अमर उजाला आर्काइव से)

अमर उजाला

पुराने पन्नों से — 1 जुलाई, 1991

कोयले के दाम शीघ्र ही बढ़ाए जाएंगे

कोयले के दाम बढ़ाये जायेंगे

केंद्रीय कोयला मंत्री पीए संगमा ने बजट से पहले ही कोयले की कीमतों में बढ़ोतरी का संकेत दे दिया है। कीमतों में बढ़ोतरी की जरूरत इसलिए पड़ गई, क्योंकि खर्चों में वृद्धि के कारण कोयला उद्योग को मुआवजा देना पड़ेगा।

बड़ी नदियों के लिए जरूरी हैं छोटी नदियां

यदि छोटी नदियों में पानी कम होगा, तो बड़ी नदियां भी सूखी रहेंगी। छोटी नदी में गंदगी या प्रदूषण होगा, तो वह बड़ी नदी को भी प्रभावित करेगा।

पंकज चतुर्वेदी

जल संकट

केंद्रीय जल आयोग (सीडब्ल्यूसी) की ओर से जारी आंकड़ों के विश्लेषण के बाद यह बात सामने आ रही है कि हमारी नदियां तेजी से सूख रही हैं। नदियों में जल भरने लायक बरसात होने में अभी कम से कम सौ दिन हैं। चिंता की बात यह है कि बर्फ से ढंके हिमालय से निकलने वाली नदियों- गंगा-यमुना के जल-विस्तार क्षेत्र में सूखा अधिक गहराता जा रहा है। सरकार भी चिंतित है कि गंगा बेसिन के 11 राज्यों के लगभग 2,86,000 गांवों में पानी की उपलब्धता धीरे-धीरे घट रही है। नदियों में घटता बहाव कोई अचानक नहीं आया है। यह साल-दर-साल घट रहा है। लेकिन नदी धार के कम होने का सारा दोष प्रकृति या जलवायु परिवर्तन पर डालना सही नहीं होगा।

हमारे देश में 13 बड़े, 45 मध्यम और 55 लघु जलग्रहण क्षेत्र हैं। जलग्रहण क्षेत्र उस संपूर्ण इलाके को कहा जाता है, जहां से पानी बहकर नदियों में आता है। इसमें हिमखंड, सहायक नदियां, नाले आदि शामिल होते हैं। तीन नदियां-गंगा, सिंधु और ब्रह्मपुत्र हिमालय के हिमखंडों के पिघलने से निकलती हैं। इन सदानीरा नदियों को 'हिमालयी नदी' कहा जाता है। शेष पठारी नदी कहते हैं, जो मूलतः बरसात पर निर्भर होती हैं।

आंकड़ों के आधार पर हम पानी के मामले में पूरी दुनिया में सबसे ज्यादा समृद्ध हैं, लेकिन पूरे पानी का कोई 85 फीसदी बारिश के तीन महीनों में समुद्र में चला जाता है और नदियां सूखी रह जाती हैं। जब छोटी नदियां थीं, तो इस पानी के बड़े हिस्से को अपने आंचल में संभाल कर रख लेती थीं। नदियों के सामने खड़े हो रहे इस संकट ने मानवता के लिए भी चेतावनी का बिगुल बजा दिया है। जाहिर है कि बगैर जल के जीवन की कल्पना संभव नहीं है। हमारी नदियों के सामने मूलतः तीन तरह के संकट हैं-पानी की कमी, मिट्टी का आधिक्य और प्रदूषण।

धरती के तापमान में हो रही बढ़ोतरी के चलते मौसम में बदलाव हो रहा है, जिसके चलते या तो बारिश अनियमित हो रही है या फिर बेहद कम। ये सभी परिस्थितियां नदियों के लिए अस्तित्व का संकट पैदा कर रही हैं। सिंचाई व अन्य कार्यों के लिए नदियों के अधिक दोहन, बांध आदि के कारण नदियों के प्राकृतिक स्वरूपों के साथ छेड़छाड़ के चलते भी उनमें पानी कम हो रहा है।

यदि उत्तराखंड के गढ़वाल और कुमाऊं मंडलों की गैर हिमानी नदियों की दुर्गति पर गौर करें, तो समझ आ जाएगा कि आखिर गंगा बेसिन में जल संकट क्यों है? अल्मोड़ा के जागेश्वर में गंगा का प्रवाह कभी 500 लीटर प्रति सेकंड था, जो आज महज 18 लीटर रह गया है। गैर हिमानी नदियां प्रायः झरनों या भूमिगत जल स्रोतों से उपजती हैं और साल भर इनमें पानी रहता है। जो विशाल गंगा मैदानी इलाकों में आती है, उसमें 80 फीसदी जल गैर-हिमानी नदियों से आता है और मात्र 20 फीसदी जल हिमनद से मिलता है।

अनुमान है कि आज भी देश में कोई 12 हजार ऐसी छोटी नदियां हैं, जो उपेक्षित हैं और उनके अस्तित्व पर खतरा है। 19वीं सदी तक बिहार (झारखंड सहित) में कोई छह हजार नदियां हिमालय से उतर कर आती थीं, आज इनमें से महज 400 से 600 का ही अस्तित्व बचा है। मधुबनी, सुपौल में बहने वाली तिलयुगा नदी कभी कोसी से भी विशाल हुआ करती थी, आज उसकी जलधारा सिमट कर कोसी की सहायक नदी के रूप में रह गई है। सीतामढ़ी की लखनदेई नदी को तो सरकारी इमारतें ही चाट गईं। नदियों के इस तरह रूठने और उससे बाढ़ व सूखा के दर्द की कहानी देश के हर जिले और कस्बे की है।

इन दिनों बिहार के 23 जिलों में बहने वाली 24 नदियां सूख कर सपाट मैदान हो गईं। इनमें से उत्तर बिहार की 16 और दक्षिण बिहार की आठ नदियां हैं। इन सभी नदियों की कुल लंबाई 2,986 किलोमीटर है। इसमें लगभग 670 किलोमीटर क्षेत्र में गाद भर गया है। अंधाधुंध रेत खनन, जमीन पर कब्जा, नदी के बाढ़ क्षेत्र में स्थायी निर्माण ही छोटी नदियों के सबसे बड़े दुश्मन हैं। दुर्भाग्य से जिला स्तर पर कई छोटी नदियों का राजस्व रिकॉर्ड नहीं है, उन्हें नाला बता दिया जाता है। जिस साहिबी नदी पर शहर बसाने से हर साल गुरुग्राम डूबता है, अब उसका बहुत-सा रिकॉर्ड ही नहीं हैं।

वैसे तो हर नदी समाज, देश और धरती के लिए बहुत जरूरी है, लेकिन बड़ी नदियों से ज्यादा छोटी नदियों पर ध्यान देना अधिक जरूरी है। छोटी नदियों के मिलने से ही बड़ी नदियां बनती हैं। यदि छोटी नदियों में पानी कम होगा, तो बड़ी नदियां भी सूखी रहेंगी। यदि छोटी नदी में गंदगी या प्रदूषण होगा, तो वह बड़ी नदी को भी प्रभावित करेगा।

कल्पमेधा

जो कुछ भी हम करते हैं, हम केवल उसी के लिए उत्तरदायी नहीं होते, बल्कि जो कुछ नहीं करते हैं, उसके लिए भी उत्तरदायी होते हैं।

– मौलियर

सेहत में सहारा

गंभीर और ऐसी बीमारियों, जिनके इलाज में भारी रकम खर्च करनी पड़ती है, स्वास्थ्य बीमा लोगों के लिए बहुत बड़ा सहारा साबित होता है। स्वास्थ्य बीमा शुरू करने का मकसद भी यही था कि लोगों को स्वास्थ्य पर होने वाले खर्च की चिंता से मुक्त रखा जा सके। मगर इसमें एक बड़ी अड़चन थी कि पैंसठ वर्ष से अधिक उम्र के लोग स्वास्थ्य बीमा नहीं खरीद सकते थे। आमतौर पर ज्यादातर लोगों को इसी उम्र के बाद स्वास्थ्य संबंधी परेशानियां घेरती हैं। मगर स्वास्थ्य बीमा न खरीद पाने के चलते वे निराश हो जाते थे। फिर, कैंसर, हृदय रोग या एड्स जैसी कुछ गंभीर बीमारियों से ग्रस्त लोगों को इसकी सुविधा उपलब्ध नहीं थी। इसके अलावा, स्वास्थ्य बीमा खरीदने के बाद अड़तालीस महीने तक उसका लाभ नहीं उठाया जा सकता था। अब भारतीय बीमा विनियामक एवं विकास प्राधिकरण ने इन अड़चनों को दूर करते हुए नियम जारी किया है कि पैंसठ वर्ष से अधिक आयु के लोग भी स्वास्थ्य बीमा खरीद सकेंगे। यानी अब किसी भी उम्र में स्वास्थ्य बीमा खरीदा जा सकता है। बीमा कंपनियां अब कैंसर, एड्स और हृदय रोग जैसी बीमारियों की वजह से किसी को बीमा देने से इनकार नहीं कर सकतीं। बीमा खरीदने के छत्तीस महीने बाद उसका लाभ उठाया जा सकेगा।

बीमा क्षेत्र को विस्तार देने और प्रतिस्पर्धी बनाने के मकसद से इस क्षेत्र में निजी बैंकों और विदेशी कंपनियों के लिए सौ फीसद निवेश का रास्ता खोला गया था। फिर बीमा कंपनी बदलने की भी छूट दे दी गई थी। निस्संदेह इससे बीमा कंपनियों में प्रतिस्पर्धा बढ़ी और लोगों को इसका लाभ मिलना भी शुरू हो गया। मगर स्वास्थ्य बीमा के मामले में कई तरह की अड़चनें बनी हुई थीं। उम्र और कुछ गंभीर बीमारियां इस रास्ते में बड़ी बाधा थीं। अब उनके हट जाने से निस्संदेह बहुत सारे लोगों के लिए आसानी हो जाएगी। अब जिस तरह जलवायु परिवर्तन और बदलती स्थितियों के चलते अनेक प्रकार की नई-नई बीमारियां पैदा हो रही हैं और बहुत सारे लोगों के लिए इलाज कराना मुश्किल होता जा रहा है, उसमें बीमा कंपनियों का वृद्धावस्था की ओर बढ़ती आबादी को इस सुविधा से वंचित रखना उचित नहीं था। दुनिया के अनेक देशों में वृद्धों की सेहत पर विशेष ध्यान दिया जाता है, मगर जिस तरह हमारे देश में सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं पर बोझ और उनमें सुविधाओं का अभाव बढ़ता गया है, उसमें बुजुर्ग आबादी की सेहत का ध्यान रखना चुनौती बनता गया है। ऐसे में स्वास्थ्य बीमा की शर्तों को लचीला बनाने से कुछ बेहतर नतीजे मिल सकते हैं।

मगर अब भी स्वास्थ्य बीमा योजनाओं को पुख्ता, पारदर्शी और प्रभावशाली बनाने की जरूरत रेखांकित की जाती रहती है। केंद्र सरकार ने आयुष्मान योजना के तहत करोड़ों लोगों को स्वास्थ्य बीमा की सुविधा उपलब्ध करा रखी है। कुछ लोग कंपनियों आदि की सामूहिक बीमा के अंतर्गत आते हैं। कुछ लोगों ने निजी स्तर पर स्वास्थ्य बीमा ले रखा है। मगर चूंकि स्वास्थ्य बीमा की सुविधा का लाभ निजी अस्पतालों में ही लिया जाता है, वहां इनके दावे आदि को लेकर कई तरह की अनियमितताओं की शिकायतें मिलती रहती हैं। कोरोना काल के बाद स्वास्थ्य बीमा की वार्षिक किस्तें पचास फीसद से अधिक बढ़ चुकी हैं। इसलिए स्वास्थ्य बीमा नियमों को लचीला बनाने के साथ-साथ इन्हें व्यावहारिक और पारदर्शी बनाने की दिशा में भी भरोसेमंद कदम उठाने की जरूरत है।

नया ध्रुव

मालदीव में पिछले वर्ष मोहम्मद मुइज्जू ने राष्ट्रपति चुनाव जीता, तभी साफ हो गया था कि वहां की सत्ता अब नए रास्ते पर बढ़ चली है। अब वहां हुए संसदीय चुनाव में भी मुइज्जू की पार्टी पीपुल्स नेशनल कांग्रेस ने दो तिहाई से ज्यादा सीटों पर बड़ी जीत दर्ज कर ली है। इससे स्पष्ट है कि मालदीव का रुख पहले के मुकाबले बिल्कुल अलग होगा और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उस पर चीन का असर दिखेगा। दरअसल, संसदीय चुनाव को मुइज्जू की सबसे बड़ी राजनीतिक परीक्षा के तौर पर देखा जा रहा था। हालांकि मुइज्जू और उनकी पार्टी की राजनीति को देखते हुए पिछले कुछ महीनों के दौरान मालदीव पर चीन के हावी होने को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सकारात्मक नहीं माना जा रहा था और वहां के संसदीय चुनाव पर उसका असर पड़ने की उम्मीद की जा रही थी। मगर ऐसा नहीं हुआ। अब मालदीव में मुइज्जू की पार्टी की भारी जीत को चीन के समर्थन और भारत के विरोध पर आधारित उनकी नीतियों पर मुहर के तौर पर देखा जाएगा।

गौरतलब है कि राष्ट्रपति का पदभार संभालने के बाद मुइज्जू ने भारत के प्रति अपने पूर्वाग्रहों को छिपाया नहीं और 'भारत को बाहर करो' की नीति पर चलते हुए भारतीय सैनिकों को वापस भेजना शुरू कर दिया था। दूसरी ओर, पर्यटन से जुड़ी अर्थव्यवस्था, खाद्य सुरक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के लिए भारत पर अपनी निर्भरता को कम करने के साथ-साथ मालदीव ने तुर्किए और अन्य कई देशों के साथ समझौते किए। खासकर चीन के प्रति मुइज्जू का झुकाव सभी जानते हैं। उनके राष्ट्रपति बनने के बाद मालदीव की कई बड़ी परियोजनाओं का काम चीन की कंपनियों को मिल चुका है। मालदीव और चीन के बीच सैन्य समझौता भी हुआ था। सच यह है कि चीन प्रकारांतर से मालदीव पर अपना नियंत्रण कायम करना चाहता है और इसी वजह से उसे कुछ विशेष महत्त्व देता है। अब वहां की संसद में अपनी पार्टी का बहुमत होने से देश में चीन के निवेश या अन्य सहयोग संबंधी फैसलों को लागू करने में मुइज्जू को कोई बाधा नहीं होगी। मगर मालदीव पर चीन का बढ़ता प्रभाव भारत के लिए चिंता की बात है।

आर्थिक विकास बनाम बढ़ती बेरोजगारी

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की भारत में रोजगार संबंधी ताजा रपट में बताया गया है कि वर्ष 2000 से लेकर अब तक भारत में कुल श्रम संख्या 17 करोड़ बढ़ी है, तो वहीं बेरोजगारों की संख्या 92 लाख से बढ़कर करीब ढाई करोड़ हो गई है।

परमजीत सिंह वोहरा

इन दिनों भारत अपनी जीडीपी दर के हिसाब से आर्थिक तरक्की के बेहतरीन सोपान पर है। पर, यह भी सच है कि लगातार अच्छी विकास दर रहने के बावजूद भारत में अब भी कई पुरानी समस्याएं जस की तस बनी हुई हैं। अब तो कई नई समस्याएं भी पैदा हो गई हैं। आर्थिक विश्लेषण में जब भारतीय अर्थव्यवस्था पर रोजगार विहीन विकास का सेहरा बांधा जाता है, तो यह आम आदमी को बहुत अचंभित करता है। पर इस बात के भी कई मायने हैं। मसलन, बेरोजगारी की समस्या या रोजगार के अवसरों में वृद्धि का मुद्दा भारतीय समाज तथा भारतीय आर्थिक नीतियों में हमेशा से प्रमुख रहता है।

संयुक्त राष्ट्र की संस्था अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन यानी आइएलओ की भारत में रोजगार संबंधी ताजा रपट में बताया गया है कि वर्ष 2000 से लेकर अब तक भारत में कुल श्रम संख्या 17 करोड़ बढ़ी है, तो वहीं बेरोजगारों की संख्या 92 लाख से बढ़कर करीब ढाई करोड़ हो गई है। यानी पिछले तेईस वर्षों में भारत में बेरोजगारी की दर दोगुनी से अधिक हो गई है। वर्ष 2019 के दौरान, जब कोरोना महामारी नहीं आई थी, भारत में बेरोजगारों की संख्या तकरीबन तीन करोड़ यानी 5.9 फीसद थी। फिर वर्ष 2022 में कुल बेरोजगारों की संख्या 2.29 करोड़ और बेरोजगारी दर घट कर चार फीसद पर आ गई। इससे स्पष्ट है कि भारत में बेरोजगारी एक अंतहीन समस्या बनी हुई है, बावजूद इसके कि यहां अच्छी आर्थिक विकास दर है।

इस रपट के मुताबिक भारत में इस समय अल्प-बेरोजगारी की दर बेरोजगारी की दर से अधिक है। भारत में प्रतिदिन का कार्य औसतन आठ घंटे के हिसाब से निश्चित है। पर वर्तमान समय में भारत की आबादी के एक बड़े तबके को प्रतिदिन के हिसाब से अत्यंत कम समय के लिए रोजगार उपलब्ध हो रहा है। कोई व्यक्ति पांच घंटे के लिए रोजगार कर रहा है, तो कोई तीन घंटे के लिए या कोई उससे भी कम समय के लिए। इसके चलते ऐसे व्यक्तियों की प्रतिदिन की आय बहुत कम है, पर उन्हें रोजगार उपलब्ध है। अल्प-बेरोजगारी की दर 2012 में पुरुष और महिलाओं में एक समान 8.1 फीसद थी, जो 2019 में बढ़ कर क्रमश 9 और 9.6 फीसद रही। हालांकि 2022 में इस दर में कमी आई और पुरुषों में यह अब 7.7 फीसद तथा महिलाओं में 7.1 फीसद दर्ज की गई है।

इस रपट के मुताबिक वर्ष 2000 से लेकर अब तक भारत में कुल श्रम संख्या का पचास से पचपन फीसद तक हिस्सा रोजगार के लिए खुद के प्रयासों पर निर्भर है, जिन्हें इस रपट में स्वरोजगार की श्रेणी में रखा गया है। आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2000 में इस श्रेणी में 52.5 फीसद लोग थे, तो 2022 में इनकी संख्या बढ़कर 55.8 फीसद हो गई। मगर कुल श्रम संख्या का यह भाग भारतीय समाज में रोजगार के लिए असंगठित क्षेत्र से जुड़ा हुआ है तथा इनकी श्रेणी में सड़क के किनारे रेहड़ी लगाने वाले, दूध और सब्जी बेचने वाले, किसी सोसाइटी में 'इलेक्ट्रीशियन' और 'प्लंबर' का कार्य करने वाले जैसे लोग सम्मिलित

हैं। मगर ये लोग आर्थिक रूप से सक्षम नहीं हैं, क्योंकि इनकी प्रतिदिन की आमदनी बहुत कम है।

इस रपट के अनुसार भारत में नियमित रोजगारों के अंतर्गत व्यक्तियों का फीसद वर्ष 2019 तक लगातार बढ़ा है, पर उसके बाद

> अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की इस रपट के विभिन्न विश्लेषणों में मुख्य रूप से भारत के अस्सी फीसद से अधिक युवाओं का बेरोजगार होना तथा उनका अधिक कुशल न होना शामिल है। इन सबके इतर एक अन्य बिंदु पर भी ध्यान केंद्रित होना आवश्यक है कि भारत की अर्थव्यवस्था को नब्बे के दशक के बाद से सेवा क्षेत्र द्वारा संचालित किया जा रहा है। आज सेवा क्षेत्र भारत में तकरीबन 55 फीसद के आसपास जीडीपी में अंशदान देता है, लेकिन रोजगार में इसका अंशदान तुलनात्मक रूप से बहुत कम है। आज भी भारत की आबादी का बड़ा हिस्सा रोजगार के लिए कृषि पर ही निर्भर है।

इसमें गिरावट देखी गई है। यकीनन, इसका मुख्य कारण कोरोना के दौरान हर संस्थान द्वारा कर्मचारियों की छंटनी है। आंकड़ों के मुताबिक वर्ष 2000 में भारत में कुल श्रम संख्या के 14.2 फीसद लोग नियमित रोजगार में थे, जबकि 2012 में इनका फीसद बढ़ कर 17.9 हो गया था और 2019 में यह सबसे अधिकतम 23.8 फीसद रहा, पर 2022 में इसमें काफी गिरावट दर्ज हुई और यह 21.5 फीसद हो गया। दूसरी तरफ भारत में अस्थायी कर्मचारियों का फीसद लगातार कम होता जा रहा है। मसलन, वर्ष 2000 में यह 33 फीसद था, जो वर्ष 2022 में घट कर 22 फीसद पर दर्ज हुआ।

आइएलओ का यह विश्लेषण भारत में बेरोजगारी की विकट स्थितियों को स्पष्ट करता है, क्योंकि पचास फीसद से अधिक तबका असंगठित क्षेत्र में स्वरोजगार की श्रेणी में है और तकरीबन 25 फीसद लोग अपना जीवन यापन नियमित रोजगार के माध्यम से कर रहे हैं। यानी देश के 75 फीसद लोगों के जीवन में रोजगार तो है, लेकिन रोजगार में स्थायित्व की कमी है। नियमित रोजगार वाले श्रमिकों की श्रेणी में तकरीबन 60 फीसद लोगों के पास किसी भी तरह का कोई लिखित अनुबंध या रोजगार की शर्तें उपलब्ध नहीं हैं। फिर, भारत में हर तरह के रोजगार, चाहे वह नियमित हो या अनियमित या स्वरोजगार की श्रेणी में, सबमें पिछले एक दशक में प्रति व्यक्ति औसत वेतन में कमी देखी गई है।

आंकड़ों के मुताबिक वर्ष 2012 में नियमित श्रमिकों का प्रतिमाह औसत वेतन 12,100 रुपए था, जो 2019 में 11,155 तथा 2022 में 10,925 पाया गया। अनियमित रोजगार की श्रेणी में तो वेतन नियमित श्रमिकों से भी बहुत कम है, पर इस वेतन में पिछले एक दशक में तुलनात्मक रूप से कुछ वृद्धि दर्ज हुई है। वर्ष 2012 में अनियमित कर्मचारियों के लिए प्रति माह औसत वेतन 3700 रुपए था जो 2022 में 4712 रुपए हो गया। वहीं असंगठित क्षेत्र में स्वरोजगार या आत्मनिर्भर श्रमिकों का वेतन प्रतिमाह 2019 में 7017 रुपए था, जो 2022 में घट कर 6840 पाया गया। यह भारत के प्रति व्यक्ति आर्थिक विकास की एक बहुत चिंताजनक तस्वीर प्रस्तुत करता है।

अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की इस रपट के विभिन्न विश्लेषणों में मुख्य रूप से भारत के अस्सी फीसद से अधिक युवाओं का बेरोजगार होना तथा उनका अधिक कुशल न होना शामिल है। इन सबके इतर एक अन्य बिंदु पर भी ध्यान केंद्रित होना आवश्यक है कि भारत की अर्थव्यवस्था को नब्बे के दशक के बाद से सेवा क्षेत्र द्वारा संचालित किया जा रहा है। आज सेवा क्षेत्र भारत में तकरीबन 55 फीसद के आसपास जीडीपी में अंशदान देता है, लेकिन रोजगार में इसका अंशदान तुलनात्मक रूप से बहुत कम है। आज भी भारत की आबादी का बड़ा हिस्सा रोजगार के लिए कृषि पर ही निर्भर है। चर्चा है कि अगर भारत की अर्थव्यवस्था पांच लाख करोड़ डालर की हो जाएगी तो बेरोजगारी आधी रह जाएगी। यह जमीनी हकीकत से बहुत दूर दिखता है।

अब आर्थिक नीतियों में कृषि, विनिर्माण तथा सेवा क्षेत्र में रोजगार के मद्देनजर नए सुधारों की जरूरत है। अगर अर्थव्यवस्था में जीडीपी लगातार बढ़ती है तो आर्थिक नीतियों की जवाबदेही रोजगार तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के लिए सौ फीसद निर्धारित होनी चाहिए। अन्यथा जीडीपी का बढ़ना आर्थिक विकास के प्रति बहुत सकारात्मक रूप को एक पक्ष को स्थापित करने में विफल रहेगा।

संवाद का सलीका

दुनिया मेरे आगे

संगीता सहाय

किसी बच्चे के धरती पर आने के साथ ही उसकी बातों का सिलसिला शुरू हो जाता है। आरंभ में वह संकेतों और शारीरिक भाव-भंगिमाओं के माध्यम से अपनी बात कहता है या अपनी इच्छा-अनिच्छा से लोगों को अवगत कराता है। फिर जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, उसकी समझ और दिमाग में शब्दों के भंडार में बढ़ोतरी होती जाती है और साथ ही वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए शब्दगुच्छ का प्रयोग करने लगता है। जैसे-जैसे उसकी समझ और ग्राहय क्षमता में स्पष्टता आती जाती है, उसकी अभिव्यक्ति और भाषा भी स्पष्ट होती जाती है। वास्तव में 'बातें' बस बात भर नहीं होतीं। हर बात के अपने मायने और महत्त्व होते हैं।

व्यक्ति सुबह से लेकर रात के सोने तक अपनी बातों को माध्यम बनाते हुए ही अपने लगभग सभी कामों को अंजाम देता है। संवाद के रूप अलग-अलग हो सकते हैं। कहा जा सकता है कि पूरी दुनिया के तमाम क्रिया-प्रक्रिया के संचालन में संवाद की भूमिका सबसे अहम है। बावजूद इसके लोग अक्सर ये कहते मिल जाते हैं कि 'बातें हैं, बातों का क्या?' एक समय था जब मौखिक बातों का महत्त्व लिखित बातों से ज्यादा होता था। लोग जुबान से निकली बात को पत्थर की लकीर मानते थे और उसे पूरा करने के लिए मर मिटते थे। किसी विषय को लेकर जुबान देने का मतलब था, किसी भी सूरत में उससे मुकरना नहीं। आज ऐसे लोगों की संख्या कम होती जा रही है। आधुनिकता के नाम पर हमारे चारों तरफ 'कहना कुछ और करना कुछ' जैसे फलसफे पर चलने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। जुबान देने और लेने जैसी बातें चलन से बाहर हो चुकी हैं। किसी भी हाल में 'पहले अपना हित, बाद में कुछ और' जैसी दलीलें इस दौर के स्याह सच बन चुके हैं। संवाद में संवेदनहीनता का घर बनता जा रहा है। एक बात में कई बातों का चस्पां होना भी आम हो चुका है। ऐसे में बातों की गरिमा का कम होना स्वाभाविक ही है।

जब 'बात' की बात निकली है, तो महत्त्वपूर्ण यह भी है कि कुछ बातें अपने अंदाजे-बयां, सलीका और शब्दों की जादूगरी से खास बन जाती हैं और लोगों की जेहन में अमिट भी। जबकि कुछ महज होठों से फिसलकर हवाओं में गुम हो जाती हैं। एक मंचीय कवि और शायर अपनी लयबद्ध बातों से अपने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देता है। किसी व्यक्ति को उत्कृष्ट नेतृत्वकर्ता बनाने में उसकी वाकपटुता और बेहतर शब्द सामंजस्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अपनी कुशल वक्तृत्व क्षमता की बदौलत वह सहजता से हजारों या लाखों लोगों तक अपनी बात पहुंचा देता है, जबकि एक अकुशल वक्ता को इसके लिए ज्यादा मशक्कत करनी पड़ती है।

किसी बात को बोलने से भी बड़ी बात है, हम क्या, क्यों, कहां और कैसे बोल रहे हैं। हमारे ग्रामीण समाज में एक कहावत प्रचलित है- 'मीठी बातें पान खिलावे, कड़वी बातें जूता', यानी अच्छी बात करने वाला सभी का मान-सम्मान हासिल करता है, जबकि अनावश्यक रूप से तिक्त बात करने वाला अपने तमाम गुणों के बावजूद समाज में समुचित सम्मान नहीं प्राप्त कर पाता। प्रेमचंद की प्रसिद्ध रचना 'बड़े घर की बेटी' में नायिका आनंदी अपनी समझदारी भरी बातों से अपने परिवार को बिखरने से बचा लेती है, हालांकि एक बोली की वजह से परिवार बिखरने पर उतारू हो जाता है। हमारे आसपास भी ऐसे अनगिनत उदाहरण मिल जाते हैं। बात व्यक्तिगत संबंधों की करें या राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय संबंधों की, हर जगह बातों की जादूगरी का बोलबाला है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में बारंबार बातों की महिमा को दर्शाया गया है। इसने बड़े से बड़े युद्ध को रोका है तो बड़ा से बड़ा युद्ध करवाया भी है।

बातों की महत्ता इससे साबित होती है कि वे सकारात्मक भाव से कही जा रही हैं या नकारात्मक भाव से। संवेदनशील और तथ्यपरक बातें रंजोगम से डूबे लोगों में भी सकारात्मकता की सुवास फैला देती हैं, जबकि नकारात्मक बातें खुशगवार माहौल में भी निराशा भर देती हैं। बातें किसी के दिल से निकली हों, वे राग या विराग होती हैं। इसका असर बोलने और सुनने वाले दोनों पर होता है। कुछ स्वयं गमजदा होकर भी दूसरों के गम को अपने स्नेहिल शब्दों से हर लेते हैं। जबकि कुछ खुशी के वातावरण को भी बोझिल बना देते हैं। कबीर कहते हैं, 'ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोए, औरन को शीतल करे, आपहूं शीतल होए।'

> बातों की महत्ता इससे साबित होती है कि वे सकारात्मक भाव से कही जा रही हैं या नकारात्मक भाव से। संवेदनशील और तथ्यपरक बातें रंजोगम से डूबे लोगों में भी सकारात्मकता की सुवास फैला देती हैं, जबकि नकारात्मक बातें खुशगवार माहौल में भी निराशा भर देती हैं।

किसी व्यक्ति की सफलता इन्हीं राहों से होकर गुजरती हैं। व्यक्ति की बातें उसके व्यक्तित्व का आईना होती हैं। पहले धैर्य के साथ सुनना, समझना, मनन करना, फिर बोलना, यह कला जिस व्यक्ति में होती है, वह जीवन की हर बाजी को जीतने की क्षमता रखता है। कोई नौकरीपेशा हो, व्यापारी हो, कलाकार हो या अन्य कार्य करता हो, सभी की सफलता और स्थायित्व के लिए वाकपटुता आवश्यक है। बातों के संदर्भ में एक आवश्यक बात यह भी है कि व्यक्ति की कथनी और करनी में सामंजस्य आवश्यक है। 'कहना कुछ, करना कुछ' जैसी चीजें पूरे समाज को चोटिल करती हैं। आजीवन वास्तविक साधुत्व को जीते राष्ट्रपिता गांधी के विवेकपूर्ण और ओजस्वी वक्तृत्व क्षमता के आगे शक्तिशाली फिरंगी और तमाम लोग नतमस्तक हो जाते थे, क्योंकि उनके पारदर्शी व्यक्तित्व में कोई दोहरापन नहीं था। जो कहना, वही करना और वैसा ही आचरण करना बापू के जीने का तरीका था। हर दौर में 'बात' का औचित्य भी इसी में है।

हमें लिखें, हमारा पता : edit.jansatta@expressindia.com | chaupal.jansatta@expressindia.com

जोखिम के खेल

पिछले कुछ समय से 'आनलाइन गेम' के नाम पर जुए जैसे खेल के प्रति आकर्षित करने की जो कोशिशें चल रही हैं और उसमें युवा जिस तरह उलझ रहे हैं, वह एक खतरनाक बीमारी के तौर पर उभर रहा है। इनमें मामूली रकम लगा कर युवाओं को रातों-रात करोड़पति बनाने का सपना दिखाया जा रहा है। इस चक्कर में युवाओं को इस खेल की लत लग रही है और लोग अपनी वर्षों की मेहनत की कमाई को यों ही जाया करने में लगे हुए हैं। नौकरी करने वाले लोग भी इसका शिकार बनते जा रहे हैं। दरअसल, ऐसे खेलों के लुभावने प्रस्ताव के बारे में लोगों को पता चलता रहता है। नाम के लिए भले ही यह कहा जाता हो कि इसमें वित्तीय जोखिम है और इसकी लत लग सकती है, मगर हकीकत सभी जानते हैं। जब आस-पड़ोस में अपवाद के तौर पर कोई आदमी करोड़पति बनता दिखता है तो दूसरों के दिमाग का कीड़ा और जाग जाता है कि जब यह जीत सकता है तो मैं क्यों नहीं। इस बर्बादी में केवल युवा पीढ़ी नहीं, कई वरिष्ठ लोग भी शामिल और आखिरकार मानसिक तनाव से पीड़ित हो रहे हैं।

– भूपेंद्र सिंह, दिल्ली विवि

सराहनीय पहल

दुनिया भर के अमीर देश हों या गरीब देश के नागरिक, आज सभी बढ़ती महंगाई और मुद्रास्फीति की मार सहने को मजबूर हो रहे हैं। अनेक देशों के खाद्य और उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माताओं ने नई तरकीब निकाली है, जिससे ग्राहकों से बढ़ा हुआ दाम लेने के बदले पुरानी कीमत पर डिब्बाबंद या पैक की हुई खाद्य वस्तु उपलब्ध तो कराई जाती है, मगर उसका वजन कम कर दिया जाता है। इसे 'सिकुड़न मुद्रास्फीति' कहा जाता है, जिसमें ग्राहकों को मानसिक रूप से लगता है कि कीमत में बढ़ोतरी नहीं हुई है, मगर उसे यह समझने में काफी समय लग जाता है कि सामान के वजन को कम करके आखिर उससे बढ़े हुए पैसे ले लिए गए हैं। फ्रांस ने इसे लेकर सख्त कानून बनाने का एलान किया है। वहां अब दुकानदारों को इस बाबत अपने हर ग्राहकों को सूचित करना होगा कि उसे पुरानी कीमत पर कम सामान उपलब्ध कराया जा रहा है। ऐसा ही नियम इस समय भारत में भी बनना चाहिए।

– जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर

आफत को न्योता

आधुनिकता और भौतिकतावाद की अंधी दौड़ में लोग इस कदर दौड़ रहे हैं कि उन्हें अपने वातावरण का भी खयाल नहीं रहा। सड़कों का विस्तार करने के लिए भी धड़ाधड़ वृक्षों को काटा जा रहा है। जहां कभी हरे-भरे खेत होते थे या फिर वृक्षों की ठंडी छांव होती थी, वहां अब कई भवन या फिर औद्योगिक इकाइयां स्थापित हो गई हैं। पृथ्वी को सही-सलामत रखने के लिए इसे हर तरह के प्रदूषण से बचाने के लिए सभी को प्रयास करने चाहिए। अन्यथा यहां पर रहना बदतर हो जाएगा। एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब पृथ्वी पर प्राणी जगत का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। ऐसा माना जाता है कि धरती पर लगभग तीन लाख वनस्पतियां और जीव-जंतु हैं, लेकिन इंसान ने अपने स्वार्थ के लिए पर्यावरण को इस कदर बिगाड़ रहा है कि इनमें से बहुत से जीव-जंतु लुप्त हो गए और कुछ लुप्त होने के कगार पर हैं।

– राजेश कुमार चौहान, जलंधर

मुंह न मोड़ो

चुनाव के पहले चरण में तमाम व्यवस्थाओं के वावजूद जितने मतदाताओं के केंद्रों पर आने की उम्मीद जताई गई थी, उससे कम संख्या में मतदाता मतदान केंद्रों पर पहुंचे। सवाल उठता है कि इसके पीछे कौन जिम्मेदार है? इसका जवाब है हमारी सोच। एक रपट के अनुसार, लोगों का यह आमतौर पर मानना होता है कि उनके मतदान से कोई बदलाव नहीं होगा। यहां तक कि वे मतदान को एक जिम्मेदारी के रूप में भी नहीं देखते हैं। हालांकि इस परिस्थिति के बीच भी चुनाव को लेकर ज्यादातर लोगों में उत्साह है। अपने स्तर पर लोग जो सरकार और चुनाव आयोग की सहायता कर रहे हैं। मगर कुछ लोगों के बीच अभी भी जागरूकता की कमी है। लोकसभा चुनाव में जहां एक-एक मत बेहद जरूरी होता है। भारतीय चुनाव आयोग और सरकार मिलकर इस ओर कदम तो बढ़ा रहे हैं, लेकिन अभी लंबा रास्ता तय करना बाकी है।

– निखिल रस्तोगी, लखनऊ विवि

www.readwhere.com

नवभारत टाइम्स

नवभारत टाइम्स । नई दिल्ली । मंगलवार, 23 अप्रैल 2024

मुइज्जू की जीत के मायने

मालदीव में रविवार को हुए संसदीय चुनावों में राष्ट्रपति मोहम्मद मुइज्जू की पार्टी की भारी जीत को कूटनीतिक हलकों में दिलचस्पी से देखा जा रहा है। समझा जाता है कि इस जीत के बाद राष्ट्रपति मुइज्जू भारत से दोस्ती की पारंपरिक नीति छोड़कर चीन से करीबी बढ़ाने की राह पर और तेजी से आगे बढ़ेंगे।

भारत विरोधी रुख | इसके संकेत तभी से मिलने लगे थे, जब पिछले साल राष्ट्रपति चुनाव के दौरान मुइज्जू ने भारत विरोधी रुख अख्तियार करते हुए भारतीय सेना को मालदीव से निकालना मुख्य मुद्दा बना लिया था। राष्ट्रपति निर्वाचित होने के बाद उन्होंने इस दिशा में कदम उठाना शुरू कर दिए। हालांकि भारतीय सैनिकों की वहां सांकेतिक उपस्थिति ही है। ये सैनिक उस टोही विमान की देखरेख करते हैं, जो नई दिल्ली ने मालदीव के विशाल तटीय क्षेत्रों की निगरानी के लिए उसे तोहफे में दिया है।

मालदीव : चीन की ओर झुकाव

अप्रिय विवाद | राष्ट्रपति मुइज्जू के स्पष्ट भारत विरोधी रुख के चलते रिश्तों में आ रहा तनाव उस समय अप्रत्याशित रूप से बढ़ गया, जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की लक्षद्वीप यात्रा के दौरान मालदीव के कुछ मंत्रियों ने सोशल मीडिया पर कुछ भद्दी टिप्पणियां कर दीं। इसके बाद सोशल मीडिया पर ऐसा अप्रिय विवाद शुरू हुआ, जिससे #बॉयकॉट मालदीव ट्रेंड करने लगा। हालांकि मालदीव सरकार ने उन मंत्रियों के खिलाफ तुरंत एक्शन लिया, लेकिन आंकड़े बताते हैं कि उस अभियान के बाद भारत से मालदीव जाने वालों की संख्या में इस कदर गिरावट आई कि जो भारत वहां विदेशी सैलानियों का सबसे बड़ा स्रोत हुआ करता था, वह छठे नंबर पर आ गया।

सामरिक लिहाज से अहम | यह घटनाक्रम भारत और मालदीव के रिश्तों के लिए अच्छा नहीं है। भारत के लिए चिंता की बात इसलिए भी है कि मालदीव हिंद महासागर का ऐसा द्वीपीय राष्ट्र है जो सामरिक लिहाज से खासा अहम है। वहां भारत विरोधी भावनाओं पर आधारित राजनीति का प्रभाव बढ़ना भारतीय हितों के लिए नुकसानदेह हो सकता है।

वेट एंड वॉच | भारत फिलहाल वेट एंड वॉच की नीति पर चल रहा है, जो ठीक ही है। ध्यान रहे, मालदीव करीब 1200 छोटे-छोटे द्वीपों का समूह है, जिनमें करीब 200 पर ही मानवीय आबादी है। यह दुनिया के उन देशों में है, जिनके समुद्री जलस्तर बढ़ने से लुप्त होने का सबसे ज्यादा खतरा है। भारत इसका सबसे करीबी पड़ोसी देश है, जहां से किसी भी तरह की आपात स्थिति में आसानी से मदद पहुंच सकती है। जरूरत पड़ने पर भारत ऐसी मदद करता भी रहा है।

दीर्घकालिक हित | जाहिर है, मुइज्जू सरकार के मौजूदा रुख को भू-राजनीति से जुड़ी वास्तविकताओं के मद्देनजर मालदीव के दीर्घकालिक हितों के लिहाज से सही नहीं कहा जा सकता। उम्मीद की जाए कि जल्दी ही उसे इसका अहसास होगा और उसके रुख में अपेक्षित बदलाव आएगा।

धूप-छांव

ये कैसी दुविधा

प्रणव प्रियदर्शी

अपनी आजादी... अपना स्पेस... और अपनों की जरूरत - ये तीनों कितनी परस्पर विरोधी हो सकती हैं, इसका अंदाजा लगाना आसान नहीं। खुद को भी अहसास नहीं होता इसका। घर में परिवार के साथ रहते हुए इस बात पर खीझ होती रहती है कि यार इन सब झंझटों में लिखने-पढ़ने का वक्त ही नहीं मिल रहा। पर यही खीझ हवा हो जाती है, जब दस दिनों के लिए भी किसी वजह से परिवार के सदस्य कहीं और चले जाएं।

नानी के पास सब कुछ था। गांव में बड़ा सा घर, खेत-खलिहान, आसपास ख्याल रखने वाले परिवार। मगर गांव में उसका रहना मुश्किल था क्योंकि मां अकेली संतान थी उसकी। सो, जब मां की शादी हो गई तो गांव में उसे अपना जीवन निरर्थक लगने लगा। आलम यह था कि जब पटना में नाती-नतनियों के साथ होती तो भावनात्मक तौर पर भरा-पूरा महसूस करती, लेकिन अपने लिए स्पेस मिलना मुश्किल हो जाता। खुद को हर तरह से निर्भर महसूस करती। इस स्पेस की चाहत में वापस गांव जाती तो वहां आसपास के लोगों की मौजूदगी काफी महत्वपूर्ण होती, उसी वजह से पूरी तरह सुरक्षित महसूस करते हुए वहां रह भी पाती, लेकिन जीवन का एक कोना इतना सूना पड़ जाता कि उसे झेलना मुश्किल होता। उसे भरने की इच्छा फिर बेटी के पास खींच लाती। मेरी नानी के साथ यह दुविधा जीवन भर बनी रही। फिर भी, उसका जीवन इस मायने में बेहतर कहा जाएगा कि कम से कम दोनों विकल्प उसे आजीवन उपलब्ध रहे। आजकल जीवन के पूर्वार्ध में बच्चों का करियर परवान चढ़ने की चिंता में घुलते और उत्तरार्ध में उनके आने और नाती-पोतों से मिलने की आस ताकते, करोड़ों की कोठियों में अकेले गुजर-बसर करते बुजुर्गों की सोच कर दिल दहल उठता है। इनमें से बहुतों का बच्चों के पास जाकर रहने का अनुभव ऐसा होता है कि एक बार के बाद दोबारा आजमाने का मन नहीं होता। पर यह इच्छा तो रहती ही है कि बच्चे अपने बच्चों के साथ छुट्टियां बिताने ही सही, उनके पास आया करें। दिक्कत यह है कि हर जीवन ऐसे अदृश्य धागों से बंधा संचालित होता है कि ज्यादातर मामलों में लोग खुद को कठपुतलियों से ज्यादा की हैसियत में महसूस नहीं कर पाते। मनचाहे ढंग से या भावुकता के वशीभूत होकर तत्काल कोई बड़ा फैसला कर लें इस स्थिति में कम ही लोग रहते हैं। इसलिए वे चाहते हैं कि दूसरे लोग, जो उन पर निर्भर हैं, उनके मुताबिक फैसला करें। इस श्रेणी में आते हैं बच्चे और बुजुर्ग। बच्चे इसे अपेक्षाकृत आसानी से स्वीकार कर लेते हैं। पर बुजुर्गों का मामला मुश्किल होता है।

सवाल है कि निर्भरता को स्वीकार करते हुए अपने व्यक्तित्व को तिरोहित कर देना ज्यादा आसान है या अपने स्पेस में रहते हुए अपनेपन के दायरे को थोड़ा विस्तृत करके उसमें नए-नए लोगों को प्रवेश देना?

बोल वचन

पैरों में लगा आलता

राहुल पाण्डेय

घर में शादी हो या कथा, नवरात्र हो या वसंत, अगर पैरों में आलता नहीं लगा है तो माना जाता है कि संपूर्ण शुभता नहीं आ सकती। वैसे तो आलता या महावर बहुत छोटी सी चीज है। गाढ़ा गुलाबी रंग ही तो, जिससे पैरों में तरह-तरह की डिजाइन बनाई जाती है। इसके बगैर स्त्री का सोलह श्रृंगार पूरा नहीं होता है। यूपी हो या बिहार, बंगाल हो या ओडिशा या फिर असम, आलता लगाए बगैर न तो दुल्हन पूरी मानी जाती है और न ही दूल्हा। आलता तो दोनों को लगाना होता है, चाहे कम लगाएं, चाहे ज्यादा। आलता संस्कृत का शब्द है, पर यह संस्कृत से सीधे हिंदी में नहीं आया। संस्कृत में इसे लक्ष्य रस भी कहा जाता है तो अलक्तक भी। इसी अलक्तक से आलता सबसे पहले बंगाली जमीन पर उतरा। वहां से इसने असम, ओडिशा होते हुए लगभग संपूर्ण उत्तर भारत में लोगों के चरण कमल बनाए। लक्ष्य रस इसे इसलिए कहा जाता था क्योंकि पहले यह लाख से तैयार किया जाता था। बाद में यह चुकंदर के पत्ते, सिंदूर और कुमकुम पाउडर से बनाया जाने लगा, और अब तो अक्सर सब जगह केमिकल वाला रंग ही मिलता है। जानकार लोग बंगाल और ओडिशा का बना आलता ही लेते हैं, क्योंकि वहां अभी भी इसे परंपरागत रूप से तैयार किया जाता है। आलता कोई आज का नहीं है। ऐसी कई पुरानी तस्वीरें हैं, जिसमें श्रीकृष्ण राधा के पैरों में आलता लगाते दिखते हैं। कथक, भरतनाट्यम, कुचिपुड़ी, मणिपुरी से लेकर असम का बिहू डांस भी बगैर आलता के अधूरा माना जाता है। आलता के इंग्लिश में red colour के अलावा और कुछ नहीं है। आलता शुभ है, इसलिए यह हम भारतीयों के लिए रंग और धर्म से भी कहीं ज्यादा है। हिंदू हों या मुसलमान- शुभ कर्मों में आलता तो दोनों ही लगाते हैं।

Subrata Dhar

युवा मतदाता वोट के ज़रिए जिस दल को चुनेंगे उससे उनके भविष्य को आकार देने में मदद मिलेगी

लोकतंत्र की खातिर ज़रूर दें पहली बार वोट

टी के अरुण

AI Image

कई लोग राजनीतिक दल का चुनाव उसी तरह करते हैं, जैसे विश्व कप में किसी टीम को सपोर्ट करने का फैसला करना। परिवार और दोस्तों की पसंद-नापसंद बहुत बड़ी भूमिका निभाती है इसमें। किसी खास नेता का राष्ट्रीय या स्थानीय स्तर पर पैदा किया असर भी अंतर पैदा करता है। सत्ताधारी दलों के दावे और प्रतिदावे भी मायने रखते हैं।

भविष्य गढ़ने वाला | पहली बार वोट डालने वाला एक ऐसा विकल्प चुन रहा है, जो उसके भविष्य को आकार देने में मदद करेगा, एक ऐसी दिशा में आगे बढ़ेगा जो सभी के लिए अवसरों और स्वतंत्रता का विस्तार करेगा या उन्हें सीमित करेगा। इस तरह से किसी को वोट देना किसी टीम को सपोर्ट करने से बहुत अलग है।

चयन में सावधानी | हमारे सामने परफेक्ट राजनीतिक विकल्प नहीं हैं। इसलिए जरूरी है कि हम कम से कम खराब विकल्प न चुनें। हम ऐसा चुनाव करें, जिससे विकल्प और प्रयोग का रास्ता खुला रहे ताकि लोग नई सोच और खुद को संगठित करने के नए तरीके विकसित कर सकें। मेरा मानना है कि नए मतदाताओं को लोकतंत्र की खातिर वोट जरूर देना चाहिए।

हीरो की चाहत | हम आज मुश्किल हालात में जी रहे हैं। जिस हवा में हम सांस ले रहे हैं, वह प्रदूषित है। पानी को पीने के लिए फिल्टर करना पड़ता है। सड़कों पर भीड़ है। अच्छी नौकरियां मुश्किल से मिलती हैं। शिक्षा में खामी है, स्वास्थ्य सेवा खराब है या फिर बहुत महंगी। व्यक्तिगत अधिकार और स्वतंत्रता सीमित हैं। हर जगह भ्रष्टाचार का बोलबाला है। क्लाइमेट चेंज ने गर्मी, सूखे और बेमौसम बारिश के रूप में कहर बरपाना शुरू कर दिया है। इन सारी समस्याओं के सामने व्यक्ति खुद को बहुत लाचार महसूस करता है। ऐसे में संकटों से बचाने वाले 'सुपरह्यूमन' की लोकप्रियता बढ़ रही है, फिर चाहे फिल्में हों या राजनीति।

चाह के साथ राह | फिर भी सब कुछ निराशाजनक नहीं है। देश की डेमोग्राफी युवा ऊर्जा लेकर आती है और उम्मीद भी बंधाती है। हम सूचना युग में जी रहे हैं, जिसमें संपूर्ण मानव ज्ञान, रचनात्मकता और सौंदर्य उन लोगों के लिए अवेलेबल है, जो इसकी तलाश में हैं। उद्यमियों के पास मौका है कि वे अपने आइडिया और सपनों को पूरा कर सकें। इससे रोजगार मिलता है, आय के साधन पैदा होते हैं। किसी अच्छे आइडिया पर लोग ऑनलाइन चर्चा कर सकते हैं, फिर उस पर अमल किया जा सकता है।

कमाई कम, वादे ज्यादा | सच यह भी है कि समर्थन पाने के लिए राजनीतिक दल चुनाव प्रचार में चांद-तारे तोड़ने का वादा करते हैं। सभी के लिए सरकारी कल्याणकारी योजनाओं, सरकारी नौकरियों, शिक्षा और स्वास्थ्य पर ज्यादा खर्च, वंचित समुदाय के लोगों के लिए विशेष सहायता, सभी के लिए घर जैसे वादे किए जाते हैं। लेकिन सरकार की आमदनी सीमित होती है। इसका जरिया हैं टैक्स कलेक्शन, टेलिकॉम में लाइसेंस और स्पेक्ट्रम फीस, खनिज रॉयल्टी, प्रॉपर्टी की रजिस्ट्री, कुछ सरकारी सेवाओं पर यूजर चार्ज वगैरह।

वोटरों की मुश्किल
- विकल्प परफेक्ट नहीं, सो चयन अहम
- खराब चयन से हर हाल में बचना होगा
- धर्म की सियासत सबके लिए खराब

कहां से आएगा पैसा | अब जान लेते हैं कि सरकार का खर्च क्या है। पड़ोसी मुल्कों के साथ रिश्ते तनावपूर्ण हैं। ऐसे में देश को डिफेंस पर इच्छा से ज्यादा खर्च करना पड़ता है। केंद्र और राज्यों का पिछले उधारों पर ब्याज GDP के 5% से भी ज्यादा है। सैलरी और पेंशन पर GDP का 1.5% खर्च होता है। कुल मिलाकर केंद्र और राज्य सरकारों के पास GDP का 20% से कम हिस्सा बचता है, चुनावी वादों को पूरा करने के लिए। एजुकेशन पर GDP का 6% और स्वास्थ्य देखभाल पर 4% खर्च करने के वादे को इस सचाई के आईने में देखना चाहिए।

सवाल बनते हैं | वहीं, क्या एक नागरिक के रूप में हमारा इस पर कोई अधिकार है कि यह पैसा कैसे खर्च किया जाता है? क्या गांव के स्कूलों और शहरों के सीवरेज सिस्टम को सुधारने से ज्यादा अच्छा है न्यूनतम समर्थन मूल्य को लगातार बढ़ाना, अनाज की सरकारी खरीद करना? क्या स्थायी घर बनाकर देने से बेहतर है कि प्रवासी मजदूरों के लिए किराये पर घर बनाए जाएं? क्या सरकारी हेल्थ इंश्योरेंस से बेहतर होगा कि स्टेट हॉस्पिटल्स में सीधे स्वास्थ्य देखभाल का प्रावधान हो? उद्योगपतियों को सबसिडी के बजाय क्या यह अच्छा रहेगा कि वही पैसा विश्वविद्यालयों में रिसर्च में लगाया जाए? शासन संबंधी निर्णयों के लिए उस विशेषज्ञता की जरूरत होती है, जो सीधे तौर पर निर्वाचित प्रतिनिधियों के पास नहीं होती। फिर भी, हमारे प्रतिनिधियों का काम है कि वे विशेषज्ञों को बुलाएं, उनकी बात सुनें और लोगों के हित में विकल्प चुनें।

गलत प्रथा | आजकल बिना बहस के कानून पास करना और विपक्षी सदस्यों पर प्रतिबंध लगाना आम हो गया है। ये चीजें लोकतंत्र के विपरीत हैं और उस मॉडल को सूट करती हैं जहां एक व्यक्ति सबकुछ जानता है और विधानमंडल तो बस औपचारिकता निभाने के लिए होता है।

आदर्श विरासत | जाति व्यवस्था भारतीय परंपरा की एकमात्र विरासत नहीं। आध्यात्मिकता के प्रति एक दृष्टिकोण जो मुक्ति के हर मार्ग को समान रूप से मानता है, वह भी हमारी विरासत का हिस्सा है। धार्मिक विविधता को स्वीकार करने की संस्कृति के साथ भारत पूरी दुनिया के लिए एक मिसाल कायम कर सकता है।

सांप्रदायिकता के खतरे | इसके बजाय भारत में राजनीति अल्पसंख्यकों के बहिष्कार की ओर बढ़ रही है। सांप्रदायिक राजनीति प्रत्यक्ष तौर पर अल्पसंख्यकों को नुकसान पहुंचाती है, लेकिन अल्पसंख्यकों को दबाने के लिए राज्य की मनमानी बहुसंख्यकों के कमजोर हिस्से को भी प्रभावित करती है। यहां तक कि बहुसंख्यकों में से सबसे सशक्त लोगों के लिए भी उत्पीड़न बाघ की सवारी करने जैसा ही होता है।

सबका सशक्तीकरण | युवा भारतीयों के लिए लक्ष्य होना चाहिए कि वे एक इंसान के रूप में अपनी संभावनाओं को पहचानें। व्यक्तिगत प्रयास प्रॉजेक्ट का एक हिस्सा है, लेकिन अच्छी स्कूलिंग या गांव से स्कूल तक सड़क सामूहिक सशक्तीकरण से ही संभव है।

देखने का, प्रॉब्लेम कऊन सा कैटिगरी में गिरताए

दीपक पाचपोर

भौत सा लोग कूं आजकल लोकशाही का कुछ जास्तीच फिकिर होताए। अपुन का फ्रेंड बाबूराव इसकूं 'पोलिटिकल फिकिर' बोलताए। वो दुनिया का अक्खा प्रॉब्लेम को अलग-अलग कैटिगरी का भीतर फिट किएलाए। जबी तुम महंगाई का बात करेंगा, तबी वो उसकूं 'इकानॉमिकल फिकिर' कहेंगा। शेयर मार्केट गिरेंगा तबी वो उसकूं 'फाइनेंशियल फिकिर' बोलेंगा। किदर गणपति विसर्जन को लेके रस्ता बदलेंगा तबी वो उसकूं 'सोशल फिकिर' बोलताए। उसका आइडिये से अलग-अलग करके कोई बी प्रॉब्लेम पे सोचेंगा तो सोलूश्यन ताबड़तोड़ मिलेंगा। पैले समजना मांगताए कि प्रॉब्लेम का कैटिगरी कऊन सा होताए।

बाबूराव का आइडिये से जईसा एक्सरा वाला डॉक्टर डिलीवरी नई कराने कूं सकताए, वईसाइच मेडिसिन वाला से तुम सर्जरी कराने कूं सकताए क्या? नई न? अइसाइच फाइनेंशियल प्रॉब्लेम का सोल्यूशन तुम पोलिटिकल एक्सपर्ट से कराने कूं नई सकताए। पैले प्रॉब्लेम को समजने का। ये बोले तो बाबूराव का इश्टाइल। अपुन बाबूराव से पूछेला कि जबी सबकूं जेल भेजताए तबी तुम इसकूं कऊन सा कैटिगरी में डालेंगा? तबी बाबूराव बोलताए- 'कोई-कोई प्रॉब्लेम का कोई बी कैटिगरी नई होएंगा। इसकूं एंटरटेनमेंट मानने का। खाली देखने का, सुन के लेने का अऊर टाइम पास करने का।' अपुन भड़क के कहेला- 'अईसा क्या बोलताए तुम बाबूराव? तुम सबकूं अईसा उठा-उठा के जेल का भीतर डालेंगा तबी लोकशाही कईसा चलेंगा? सरकार कईसा चलेंगा?'

खाली पीली

बाबूराव अपुन कूं शांत करने का वास्ते चा मंगाया। फिर बोलताए, 'भिड़, नेते लोग एक दूसरे कूं जेल भेजताए ना वो खाली एक दूसरा कूं फायदा पहुंचाने का वास्ते। पोलिटिक्स का भीतर तुम जिसकूं जेल भेजेंगा न, वो बड़ा आदमी बनके निकलेंगा। वो जबी खुर्ची पे बैठेंगा तबी वो तुमकूं जेल भेजेंगा। अईसा एक दूसरे को बड़ा करने का गेम होताए, बावा! तुम सोचताए कि तुम पॉलिटिक्स का भीतर कोई बड़ा-बड़ा काम करके नाम कमाने कूं सकताए। अईसा नई। जास्ती पब्लिकसिटी तुमकूं मिलेंगा रस्ता जाम करके, बोमाबोम करके, पुलिस का लाठी खाके.., लास्ट में जेल जाके। जूना बखत का तुम जित्ता बी नेता देखताए न, वो अक्खा लोग जेल गएले।'

'पन बाबूराव, वो सब देश का आजादी का वास्ते गयेला। अबी का नेते लोग लफड़ा करके जेल जाताए', अपुन कहेला। बाबूराव, 'ब्रादर, तुम समझा नई। अक्खा नेता लोग, वो कोई भी पार्टी का होन दो, एक दूसरा का ख्याल रखताए। इदर कबी बी किसी को बी किसी का जरूरत पड़ सकताए। इस करके कोई किसी कूं जेल भेजताए तो जान लेने का कि दोनों के बीच युती हुएला। सबकूं सबका पेट-पानी का इंतजाम पक्का करके रखना मांगताए। अबी अपुन तुमकूं अऊर समझाता है। जईसा कोई छोटा नेता दूसरा पार्टी का भीतर होताए पन उसकूं अपना पार्टी का भीतर लेना मांगताए, तो पैले उसको बड़ा बनाके अपना लेवल में लाने का। तबी उसका साथ तोड़पानी कर सकताए। महीना दो महीना का वास्ते उसकूं जेल भेज के उसका लेवल बढ़ाने का। अब उसका साथ मांडवली करेंगा तो तुमारा बी इज्जत बढ़ेंगा। अबी कोई चिंदीचोर का साथ हात मिलाके तुम क्या करेंगा?' अपुन बोला, 'बाबूराव तुम जईसा सोचताए वो बरोब्बर है पन कोई मंत्री, सीएम, हाफिसर को तुम जेल में डालताए तो पब्लिक का काम कईसा चलेंगा?'

बाबूराव, 'अईसा कुछ नहीं, भिड़! अक्खा काम जेल से चलताए। कोई बिजनेसमेन को तुम जेल में डालेंगा तबी बी उसका बिजनेस झक्कास चलताए। कोई बिल्डर कूं उठा के पोलिस जेल भेज देताए तबी उसका टोटल काम फुलटू चलताए। कितना प्रवचन करने वाला बाबा लोग, आश्रम चलाने वाला जेल में होताए तबी उसका नीचे वाला खाली पीली टाइम खोटी नईं करताए। उसका जगा पे वो प्रवचन देंगा। फिर भौत सा भाई लोग जेल आता-जाता रहताए। उनका हफ्तावसूली चालूच रहताए ना? बिल्डर कूं, बिजनेसमेन कूं भाई का पंटर अऊर मवाली लोग का कॉल आताए कि इत्ता-इत्ता पेटी-खोखा भेजने का। लास्ट बात- जबी सरकार में बईठ के तुम जेल चलाने कूं सकताए तबी जेल का भीतर बईठ के सरकार काएंकू नईं चलाने कूं सकताए?'

शेयर करें अपने अनुभव

आम मुंबइया भाषा में यह लेख कैसा लगा हमें बताएं nbtreader@timesgroup.com पर, और सब्जेक्ट में लिखें- **'खाली पीली'**

रास्ते में जो छोड़ गया, उसे जाने दो सब राहुल के साथ नहीं चल सकते

अब जब पहले फेज का मतदान हो चुका है, सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच जुबानी जंग पहले से भी ज्यादा तेज हो गई है। सवाल उठता है आखिर इन चुनावों में कांग्रेस का सबसे बड़ा मुद्दा क्या है। पूछा यह भी जा रहा है कि क्या विपक्ष भी मुस्लिमों को मुख्यधारा में रखने से परहेज कर रहा है। जिस तेजी से कांग्रेस के नेता पार्टी छोड़ रहे हैं, उसने भी सवाल खड़े कर रहा है। इन तमाम मसलों पर कांग्रेस के मुस्लिम फेस **इमरान प्रतापगढ़ी** से बात की **नरेन्द्र नाथ** ने। पेश हैं बातचीत के अहम अंश :

■ आम चुनाव में कांग्रेस के लिए BJP के सामने सबसे बड़ा मुद्दा क्या है?

BJP का पिछले 10 साल का कामकाज ही जनता के लिए एक बड़ा मुद्दा बन गया है। चाहे हर साल 2 करोड़ नौकरियां देने का वादा हो या महंगाई कम करने का, जनता समझ चुकी है कि ये सब जुमले ही थे। BJP का झूठ इस चुनाव का सबसे बड़ा मुद्दा है। यही वजह है कि 2024 का चुनाव BJP बनाम देश की जनता का चुनाव बन गया है।

विशुद्ध राजनीति इंटरव्यू

■ I.N.D.I.A. एकजुट क्यों नहीं रह पाया? पश्चिम बंगाल में ममता साथ नहीं हैं तो केरल में लेफ्ट। इसका कितना असर पड़ेगा?

I.N.D.I.A. एकजुट और मजबूत है। BJP ने इसे लेकर दुष्प्रचार किया जो सफल नहीं हुआ। पहले चरण के चुनाव में जिस प्रकार जनता ने I.N.D.I.A. के पक्ष में उत्साह दिखाया, उससे BJP का मनोबल कमजोर हुआ है। प्रधानमंत्री का चुनावी भाषण इस बात का प्रमाण है कि वह पहले चरण के चुनाव की ग्राउंड रियलिटी समझ चुके हैं। तभी वह न सिर्फ मनमोहन सिंह के बयान पर झूठ बोल रहे हैं, बल्कि अपने भाषण में सांप्रदायिकता परोस रहे हैं। अफसोस है कि चुनाव आयोग आंख मूंदकर बैठा है। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, तमिलनाडु- सभी जगहों पर जनता I.N.D.I.A. के पक्ष में है। दूसरी बात, कांग्रेस अपने सहयोगियों को लेकर हमेशा पारदर्शी और ईमानदार रही है। आप अगर BJP के पूर्व और वर्तमान सहयोगियों को देखें, तो उन्हें सबसे ज्यादा नुकसान BJP ने ही पहुंचाया है।

■ मुस्लिमों को कांग्रेस क्या संदेश देगी? आरोप हैं कि विपक्ष भी अब मुस्लिमों को राजनीतिक स्पेस देने से बचने की कोशिश कर रहा है...

कांग्रेस सभी को साथ लेकर चलने वाली पार्टी है। सभी धर्म, जाति के लोगों का कांग्रेस में बराबरी का सम्मान है। इमरान प्रतापगढ़ी इसका एक उदाहरण है। BJP समेत तमाम विरोधियों को इस तरह का आरोप लगाने से पहले अपने गिरेबान में झांकना चाहिए।

■ अब तक देखा गया कि विपक्ष लोकल मुद्दों पर ज्यादा जोर दे रहा है। कोई खास रणनीति?

हम जनता के बीच जा रहे है, उनके मुद्दों पर बात कर रहे हैं। जनता के साथ छलावा हुआ है, युवाओं के भविष्य को अंधकार में धकेला गया है। अग्निवीर योजना के नाम पर युवाओं का करियर चौपट किया गया। पेपर लीक की बढ़ती घटनाओं ने युवाओं का भरोसा तोड़ा है। हम स्थानीय मुद्दों के साथ-साथ वैश्विक चुनौतियों से भी जनता को अवगत करा रहे हैं। पूरे विश्व में भारत की साख में कमी आई है, चीन लद्दाख में घुसा चला आ रहा है, पूरा लद्दाख प्रदर्शन कर रहा है।

■ लेकिन नरेंद्र मोदी के सामने कोई विपक्ष का पीएम उम्मीदवार नहीं देना क्या कमजोरी नहीं है?

देश में एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत लोग सांसद चुनते हैं। वे सांसद बहुमत के आधार पर मिलकर एक नेता चुनते हैं। यही अंतर भारत और अमेरिका के चुनाव में है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। BJP का विश्वास इन संवैधानिक संस्थाओं में नहीं है, इसलिए वे बार बार इसके साथ छेड़छाड़ की बात करते हैं। इसलिए हम संविधान बचाने की बात करते हैं।

■ आप कांग्रेस के स्टार प्रचारक के रूप में उभरे हैं। मुस्लिमों के बीच ओवैसी भी पैठ बनाने की कोशिश करते हैं। उनकी राजनीति को किस तरह देखते हैं?

ओवैसी एक्सपोज हो चुके हैं। चुनाव में वह एक खास अजेंडे के साथ काम करते हैं, जिससे BJP को फायदा पहुंचता है। बस BJP के लिए उनकी उपयोगिता बची है, देश के मुसलमानों का नेतृत्व वह नहीं करते।

■ हाल में कांग्रेस के कई नेता एक के बाद एक पार्टी छोड़ चले गए। उसका पार्टी के मनोबल पर कितना असर पड़ा?

पहली बात तो यह कि 10 साल सरकार चलाने के बाद भी BJP को कांग्रेस के ही नेताओं की जरूरत पड़ रही है तो यह उनकी विचारधारा की हार है। यह 'नेहरू स्कूल ऑफ थॉट्स' की जीत है। कांग्रेस मुक्त भारत का नारा देने वाले मोदी जी के कार्यकाल में ही 'कांग्रेस युक्त BJP' दिख रही है। मैं तो बार-बार मंच से कहता हूं, 'कांटे गुल के साथ नहीं चल सकते हैं, बुजदिल खुल के साथ नहीं चल सकते हैं। रास्ते में जो छोड़ गया उसे जाने दो, सब राहुल के साथ नहीं चल सकते हैं।'

रीडर्स मेल

www.edit.nbt.in

■ ऐतिहासिक बदलाव

22 अप्रैल का संपादकीय 'जरूरी है बदलाव' पढ़ा। देश में तीन नए कानूनों का समर्थन करते हुए, मुख्य न्यायाधीश डी. वाई. चंद्रचूड़ ने उन्हें युगांतकारी बताया है। ये कानून वाकई सिस्टम को बदल सकते हैं। इन कानूनों से भ्रष्टाचार कम हो सकता है और विचाराधीन मामलों की संख्या में कमी आ सकती है। इसमें AI को मान्यता देना, ऑनलाइन दस्तावेज़ उपलब्ध कराना और कर्मचारियों के लिए समय सीमा पार करने पर दंड का प्रावधान करना शामिल है। जरूरी है कि बाधाएं खड़ी करने के बजाय इन बदलावों को सही ढंग से अमल में लाकर आजमाने की कोशिश की जाए।

मधु बुड़ावनवाला, ईमेल से

■ जीतने तक की फिकर

2 अप्रैल को 'खाली-पीली' कॉलम में प्रकाशित लेख 'इलेक्शन बोले तो नोट छापने का सीजन' से संबंधित इस पत्र में चुनाव के दौरान बेतहाशा खर्च करने के चलन पर अपनी चिंता व्यक्त करना चाहता हूं। चुनाव और काले धन का चोली-दामन का साथ है। नेता पहले वोट पाने के लिए जनता पर पैसा लुटाते हैं और चुनाव जीतने के बाद नोट बटोरते हैं। पहले नेता पार्टी में टिकट पाने के लिए पैसा खर्च करते हैं। फिर वोटरों को लुभाने के लिए पैसा, शराब, और खाने-पीने का सामान बांटते हैं। तब नेताओं को देखकर लगता है, उन्हें सबकी चिंता है। लेकिन जीतने के बाद वे कहीं नजर नहीं आते। हमें इनके भुलावे में नहीं आना चाहिए।

बाल गोविंद, नोएडा

■ चुनावी मुद्दे पर आएं

चुनाव प्रचार में विपक्षी गठबंधन I.N.D.I.A. एकजुटता का परिचय दे रहा है। सत्ताधारी गठबंधन N.D.A. भी अपने मुद्दों के साथ जनता के सामने जा रहा है। लेकिन जनता के सामने नेता जब एक-दूसरे की बुराई करने में ही सारा समय गुजार देते हैं, तो लगता है कि अपना समय बेकार कर रहे हैं। जनता उनके चुनावी मुद्दे को समझना चाहती है ताकि निर्णय लेने का उनके पास आधार हो। होता यह है कि विपक्ष सरकार की और सत्ताधारी नेता विपक्ष की टांग खिंचाई में सारा समय गंवा देते हैं। यह शोभा नहीं देता है।

मुकेश यादव, ईमेल से

nbtedit@timesgroup.com पर अपनी राय नाम-पते के साथ मेल करें।

अंतिम पत्र

होमग्राउंड में टाइटंस की फिरकी में फंस गए किंग्स – एक खबर
– कभी-कभी अजनबी हो जाते हैं लोग अपने ही घर में!

प्रीति गोयल

THE SPEAKING TREE

और पढ़ने के लिए देखें hindi.speakingtree.in

दूसरों का सम्मान करके देख लें, खुशी ज़रूर मिलेगी

जयति गोयल

हमारे देश में संस्कार और संस्कृति के नाम पर कई नारे प्रचलित हैं। इनमें एक है 'अतिथि देवो भवः'। इसको लेकर बहुत सारी बातें कही जाती हैं। हमारा आध्यात्मिक दर्शन कहता है कि मेहमान की पात्रता तभी स्वीकार्य है जब वह पवित्र हो। ऐसा नहीं कि हर किसी को घर के दरवाजे पर आने पर मेहमान का दर्जा देकर उसका स्वागत किया जाए। दरअसल इस तरह के नारे आध्यात्मिक ग्रंथों में वर्णित तत्वज्ञान के अभाव में ही समाज में प्रचलित हो गए हैं। कुछ लोग तो यह कहते हैं कि अतिथि सत्कार धर्म का सर्वोच्च रूप है और एक तरह से यह यज्ञ करने से अधिक श्रेष्ठ है। यह सत्य है कि सुपात्र मनुष्य का अतिथि रूप में सत्कार करना एक तरह से यज्ञ ही है, पर इसमें पवित्रता का विचार भी होना चाहिए।

ज्ञानी लोग हर क्रिया को यज्ञ की तरह मानते हैं। जिस तरह यज्ञ पवित्र स्थान पर पवित्र वस्तुओं से किया जाता है, उसी तरह अतिथि सत्कार का आदर भी पवित्र व्यक्ति को प्रदान किया जाना चाहिए। आज के जमाने में किसी प्यासे को पानी पिलाने से भी कतराते हैं लोग। आपसी स्वार्थ बढ़ने की वजह से भी लोग आतिथ्य सत्कार करने से कतराने लगे हैं। जब संयुक्त परिवार होते थे और घर में जगह हमेशा कम पड़ रही होती थी, तब दिल में जगह कम नहीं पड़ती थी। अब परिवार सिकुड़ रहे हैं। मकान में जगह खाली हो रही है। लेकिन दिलों में जगह कम हो रही है।

आज जब सभी के पास समय का अभाव है, ऐसे में किसी के घर कोई बिन बुलाए, बिना किसी सूचना के अतिथि आ जाए तो बहुत ही कम लोग होंगे जो उनके आने पर प्रसन्न होते हैं। आज समाज में ऐसा घृणा, स्वार्थ, ईर्ष्या और कलह का माहौल बना हुआ है कि इस प्रकार के पनपते हुए वातावरण के कारण लोग आतिथ्य को भूलते जा रहे हैं। घर आए मेहमान को आदर देना हर धर्म में अच्छा माना जाता है। भारतीय धर्म भी इसे स्वीकारते हैं। अतिथि कैसा भी हो, अमीर-गरीब हो, कोई भी जाति-धर्म का हो, कहीं से भी आया हो उसका स्वागत करना ही चाहिए।

दरवाजे पर आए हुए प्रत्येक जीव की अन्न-जल से सेवा करना प्राणी मात्र का कर्तव्य है। किसी जरूरतमंद की छोटी-मोटी मदद करने पर सुकून का अनुभव होता है। अधिक संभव न हो सके तो वाणी से ही अतिथि का सम्मान करें। अतिथि सत्कार के संबंध में एक और बात विचार करने योग्य है कि जो व्यवहार हम स्वयं के लिए चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार हमें दूसरों के साथ करना चाहिए। जब हम किसी के यहां अतिथि बनकर जाएं तो हम जैसा स्वागत सत्कार स्वयं के लिए चाहते हैं, वही हमें दूसरों के साथ करना चाहिए। साथ ही आने वाले अतिथि को यथा योग्य सुविधा और समय भी देना चाहिए। उसके आने का प्रयोजन पूछकर जब तक वह संतुष्ट ना हो जाए, तब तक अतिथि सत्कार का धर्म अधूरा ही है।

इसलिए हमें पवित्रता का ध्यान रखते हुए अतिथियों का सत्कार जरूर करना चाहिए। इससे हमें वास्तविक खुशी मिलेगी, परख कर देख लें। आधुनिक जीवनशैली अपना और तरक्की करने का मतलब यह तो नहीं है कि हम पुरानी बातें भूल जाएं, जो हमने अपने दादा-दादी, नाना-नानी, माता-पिता और अन्य गुरुजनों से सुना और जाना है। हम दोनों को साथ-साथ लेकर चल सकते हैं। और ऐसा करेंगे तभी हमें अपने जीवन की असली खुशी नजर आएगी।

आर.एन.आई. नं. 510/57© सर्वाधिकार सुरक्षित। लिखित अनुमति के बिना संपूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित। स्वत्वाधिकारी बैनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के लिए राजीव यादव द्वारा, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 से प्रकाशित तथा **टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, साइट IV, औद्योगिक क्षेत्र साहिबाबाद** और प्लॉट नंबर 7-8, सेक्टर M-11, ट्रांसपोर्ट हब, इंडस्ट्रियल मॉडल टाउनशिप, मानेसर, हरियाणा से मुद्रित। फोन : 23302000 फैक्स: 23492047, पंजीकृत कार्यालय : दादाभाई नौरोजी रोड, मुंबई-400001। विमान सेवा शुल्क : 1 रु. प्रति कॉपी। नेपाल में कुल मूल्य : सोमवार से शनिवार : नेपाली 5 रु. ; रविवार : नेपाली 6 रु.
संपादक (दिल्ली मार्केट) : आशीष पांडे (इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी)

नए कानून
अच्छी शुरुआत

भारत के प्रधान न्यायाधीश–सीजेआई ने उम्मीद जताई है कि नए अपराध न्याय कानून सालों से लंबित मामले तेजी से निपटाने में सहायक सिद्ध होंगे। सीजेआई डी.वाई. चंद्रचूड़ ने नए अपराध न्याय कानून लागू करने की प्रशंसा करते हुए इसे देश की न्यायपालिका के लिए उल्लेखनीय अवसर बताया है। न्यायपालिका देश के कानूनी परिदृश्य को स्वरूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। ऐसे में सीजेआई द्वारा नए कानूनों पर सहमति इन विधायी उपायों के भारतीय समाज पर पड़ने वाले महत्वपूर्ण प्रभावों की पुष्टि करती है। अपराध न्याय कानूनों में हालिया संशोधनों से अपराध, दंड व पुनर्वास संबंधी विधिक दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन होगा। सुनवाई जल्दी करने, पीड़ित की सुरक्षा बढ़ाने तथा सभी संबंधित पक्षों के साथ न्यायोचित व्यवहार सुनिश्चित करने पर केन्द्रित ये कानून आदिमकालीन व्यवहारों से पूर्ण अलगाव हैं। इनसे ज्यादा समतापूर्ण व सक्षम ढांचा सुनिश्चित होता है।
नए कानूनों का एक प्रमुख पक्ष मामलों की तेजी से सुनवाई है। 'देर में न्याय' भारत में लंबे समय से चिन्ता का विषय रहा है जिसके चलते मामले सालों तक अदालतों में लंबित रहते हैं। कभी–कभी सुनवाई की प्रतीक्षा में लोग दोषी पाए जाने और सजा मिलने की तुलना में जेल में ज्यादा समय बंद रहते हैं। यह स्थिति यदि दशकों नहीं तो भी सालों तक खिंच सकती है। दिसंबर, 2022 में भारतीय जेलों में 4,34,302 विचाराधीन कैदी थे जो जेलों में बंदियों की कुल संख्या का 75.8 प्रतिशत है।
नए अपराध न्याय कानून इस स्थिति को ठीक कर सकते हैं। प्रक्रियाओं को गतिशील बना कर तथा सुनवाई के लिए कठोर समयसीमा निर्धारित कर ये संशोधन समस्या से निपटने का प्रयास कर यह सुनिश्चित करेंगे कि न्याय तेजी से और सबकी पहुंच में हो। पीड़ितों की सुरक्षा पर जोर देना एक महत्वपूर्ण कदम है। अक्सर अपराध के शिकार लोग कानूनी प्रक्रिया में स्वयं को हाशियाकृत पाते हैं जिससे उनको उत्पीड़न, अपमान तथा लंबे समय तक आघात का सामना करना पड़ता है। नए कानूनों में उनके अधिकारों की सुरक्षा के प्राविधान हैं जिसमें विधिक सहायता प्रदान करना, कौसिंलिंग सेवायें देना तथा गरिमा व दृढ़ता के साथ न्यायिक व्यवस्था में अन्य सहायता शामिल है। इसके साथ ही सुधारों में 'कानून के समक्ष समानता' का सिद्धान्त रेखांकित किया गया है। इसके अंतर्गत सभी लोगों के प्रति न्यायोचित व्यवहार सुनिश्चित किया जाएगा, भले ही उनका सामाजिक दर्जा व पृष्ठभूमि कोई भी हो। पारदर्शिता, जवाबदेही व समुचित प्रक्रिया का पालन सुनिश्चित कर ये संशोधन विधि व्यवस्था में जनता का विश्वास पैदा करना चाहते हैं। सीजेआई ने उचित ही इन विधायी संशोधनों की परिवर्तनकारी क्षमताओं पर जोर दिया है। इससे वे ज्यादा न्यायोचित व समतापूर्ण समाज बनाने में सहयोग कर सकेंगे। हालांकि, ये कानून लागू करना महत्वपूर्ण मील का पत्थर है, पर उनकी सफलता अंतत: उनके क्रियान्वयन पर निर्भर है। प्रभावी क्रियान्वयन, संसाधनों का उपयुक्त आबंटन तथा निरंतर निगरानी यह सुनिश्चित करने के लिए जरूरी है कि व्यवहार में लक्षित उद्देश्य प्राप्त किया जाए। हालांकि, वर्तमान विसंगतियां ठीक करने के लिए शुरुआत हुई है, पर समतापूर्ण अपराध न्याय की ओर यात्रा निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें लगातार मूल्यांकन व सुधार जरूरी है। सामाजिक परिवर्तनों के साथ नई चुनौतियां उभरती हैं। अत: निरंतर परिवर्तन को स्वीकारने तथा उसके प्रति जिम्मेदारी प्रदर्शित करने की जरूरत है। इससे विधिक व्यवस्था की प्रभावशीलता तथा उसमें न्याय की भावना मजबूत होगी।

मुफ्त बिजली के हानिकारक नतीजे

सबको बिजली सप्लाई तक पहुंच सुनिश्चित करने तथा कर्ज से बचने के बीच विरोधाभास बना हुआ है। इससे निपटने के लिए नीतिगत परिवर्तन तथा ऊर्जा क्षेत्र में सुधार जरूरी हैं।

उत्तम गुप्ता
(लेखक, नीति विश्लेषक हैं)

केन्द्रीय ऊर्जा मंत्री आर.के. सिंह ने एक साक्षात्कार में खुलासा किया कि वे राज्यों से लगातार कहते रहे हैं कि बिजली मुफ्त नहीं है। उन्होंने कहा, 'यदि कोई राज्य उपभोक्ताओं की किसी श्रेणी को मुफ्त बिजली देना चाहे तो वह ऐसा कर सकता है, लेकिन उसे इसके लिए भुगतान करना होगा।' आर.के. सिंह का यह कथन वर्तमान परिदृश्य में महत्वपूर्ण है जब अनेक राज्य कुछ उपभोक्ताओं मुफ्त बिजली देने की घोषणायें कर रहे हैं जिससे बिजली वितरण कंपनियों या डिस्काम की जीवन्तता प्रभावित होती है। वे बिजली पैदा करने वाली कंपनियों या जेन्कोस से बिजली खरीद कर उसे उपभोक्ताओं को सप्लाई करती हैं।
मंत्री का तर्क है, 'किसी भी अन्य वस्तु की तरह बिजली उत्पादन तथा उसके वितरण पर खर्च होता है और यदि कोई राज्य उपभोक्ताओं की किसी श्रेणी को मुफ्त बिजली देता है तो उसे जेन्कोस को भुगतान करना चाहिए। यदि जेन्कोस को भुगतान नहीं मिलता है तो बिजली का उत्पादन ही नहीं होगा।' लेकिन बिजली उत्पादन से कोई समझौता नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसमें कोई कमी आर्थिक गतिविधि बंद कर सकती है। आने वाली गर्मियों में बढ़ी मांग पूरी करने के लिए केन्द्र सरकार ने बिजली कानून, 2003 की धारा 11 के अंतर्गत गैस–आधारित जेन्कोस तथा आयातित कोल आधारित थर्मल प्लांटों को बिजली उत्पादन बढ़ाने का निर्देश दिया है, भले ही इसके लिए अतिरिक्त खर्च करना पड़े। यह लगातार मांग बढ़ने की प्रतिक्रिया में किया गया निर्णय है। लेकिन जब जेन्कोस को भुगतान न किया जाए तो उत्पादन में भारी कटौती से कैसे बचा जा सकता है? इसलिए राज्यों को उनको भुगतान सुनिश्चित करना चाहिए। दबाव डालने पर संबंधित राज्य जेन्कोस को भुगतान के लिए पैसा उधार लेते हैं और 'कर्ज के जाल' में फंस जाते हैं। उदाहरण के लिए, 'आप' सरकार के पहले दो साल में पंजाब सरकार ने 47,000 करोड़ रुपया कर्ज लिया है जिससे पहले से ही भारी कर्ज के बोझ से लदे राज्य पर और बोझ बढ़ा है। ऐसे में सवाल है कि राज्य कर्ज के जाल से कैसे बच सकते हैं?
बिजली कानून, 2003 तथा इसके अंतर्गत ऊर्जा मंत्रालय द्वारा जारी दिशानिर्देशों के अनुसार डिस्काम को उपभोक्ताओं को सप्लाई की जाने वाली बिजली पर टैरिफ इस प्रकार तय करना होता है कि उसकी बिक्री से मिलने वाली औसत राजस्व प्राप्ति–एआरआर सप्लाई की औसत लागत के बराबर हो। इसमें खरीद की लागत, पारेषण व वितरण या एसीएस शामिल है। डिस्काम इसे सुनिश्चित करने का तरीका निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र हैं जिसे संबंधित राज्य बिजली नियामक आयोग–एसईआरसी को सहमति देनी होती है। आदर्श रूप से डिस्काम 'सभी' उपभोक्ताओं से सप्लाई की कुल लागत के बराबर टैरिफ तय करने को स्वतंत्र होती हैं जो इकाइयों की संख्या पर आधारित होता है। लेकिन वे इस सिद्धान्त का पालन नहीं करती हैं। वे कुछ उपभोक्ताओं, खासकर परिवारों–एचएच व किसानों से कम पैसा लेती हैं।
उदाहरण के लिए, दिल्ली में 200 यूनिट प्रति माह उपभोग करने वाले एचएच के लिए यह 3 रुपये प्रति यूनिट है जो एसीएस का लगभग आधा है। अनेक प्रकार की लेवी को शामिल कर यह 44.6 प्रतिशत हो जाता है और इस प्रकार प्रति यूनिट 4.3 रुपये की कमी आती है। 201 से 400 यूनिट उपभोग करने वाले एचएच के लिए यह 4.5 रुपये प्रति यूनिट है जिसका अर्थ प्रति यूनिट 1.5 रुपये का घाटा है। लेवी को शामिल करने के बाद यह 2.2 रुपये प्रति यूनिट हो जाता है। इस प्रकार होने वाले घाटे की प्रतिपूर्ति उद्योगों तथा बिजनेस अवस्थापनाओं से ज्यादा पैसा लेकर होती है जिनके लिए दर 16 रुपये प्रति यूनिट तक पहुंच सकती है। इस प्रकार लक्षित उपभोक्ताओं से ली जाने वाली कम दरें राजनीतिक पार्टियों द्वारा दी जाने वाली 'खैरात' के सिवा कुछ और नहीं है। लेकिन यदि राज्य के खजाने से इस घाटे की प्रतिपूर्ति न हो तो कोई इस पर गौर नहीं करेगा। इसका खर्च उठाने वाले उद्योग कुछ बोल भी नहीं सकते हैं क्योंकि डिस्काम उनको बिजली सप्लाई करने वाली एकमात्र संस्थाये हैं और उनके पास कोई विकल्प नहीं है। लेकिन राजनीतिक पार्टियां लक्षित एचएच से यह मामूली धनराशि भी नहीं लेना चाहती हैं। दिल्ली में 'आप' सरकार ने डिस्काम से कहा है कि वे 200 यूनिट तक उपभोग करने वाले एचएच को कोई बिल न दें। इसी प्रकार पंजाब में एचएच द्वारा प्रति माह 300 यूनिट तक उपभोग मुफ्त है। इस प्रकार दिल्ली में 4.3 रुपये प्रति यूनिट घाटे की प्रतिपूर्ति राज्य द्वारा डिस्काम को करनी होगी। लेकिन अधिकांश राज्य यह प्रतिपूर्ति नहीं करती हैं अथवा काफी विलंब के बाद इसका आंशिक भुगतान करती हैं। इसके कारण डिस्काम को घाटा होता है। मुफ्त बिजली की उपलब्धता उपभोक्ताओं को हेराफेरी के लिए प्रेरित करती है। उदाहरणार्थ, पंजाब में 900 यूनिट प्रति माह उपभोग करने वाले एचएच ने तीन मीटर लगवा लिए हैं ताकि उपभोग को 300 यूनिट से नीचे रख कर कोई भुगतान न करना पड़े। बताया जाता है कि अमीर उपभोक्ताओं द्वारा भी भुगतान से बचने के लिए 1,00,000 से अधिक मीटरों के स्थान पर दो या तीन मीटर लगवाये गए हैं। जहां तक राज्य से मुफ्त बिजली पाने वाले किसानों का सवाल है, वे अपने घरों में कई एसी चला कर उसे खेती के खाते में डाल कर कोई भुगतान नहीं करते हैं। इसके परिणामस्वरूप वर्तमान समय में पंजाब में 95 प्रतिशत बिजली उपभोक्ता सस्ती बिजली पाते हैं और इसके बड़े हिस्से की प्रतिपूर्ति भी डिस्काम को नहीं की जाती है। डिस्काम के नुकसान का कारण एटीएंडसी नुकसान भी है जो सीधी भाषा में बिजली चोरी है। केन्द्रीय ऊर्जा मंत्री के अनुसार, एटीएंडसी नुकसान 27 प्रतिशत है। पंजाब में उत्पादित बिजली के बड़े हिस्से का कोई हिसाब–किताब ही नहीं है। डिस्काम ने इन घाटों के कारण बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थानों से कर्ज लिया है। वित्त वर्ष 2021–22 के अंत में उनका कुल कर्ज 620,000 करोड़ रुपये था। जून, 2022 में उनको जेन्कोस तथा पारेषण कंपनियों–ट्रांसकोस को 1,40,000 करोड़ रुपये का भुगतान करना था।
केन्द्र ने डिस्काम द्वारा बकाया कर्ज भुगतान के लिए अनेक कदम उठाए हैं। लेट पेमेंट सरचार्ज–एलपीएस नियमों के अंतर्गत डिस्काम को 3 जून, 2022 तक लंबित बकाया 12 ईएमआई में भुगतान करना था। इसके परिणामस्वरूप पुराना बकाया जून, 2022 में 1,40,000 करोड़ से घट कर जुलाई, 2023 में 70,000 करोड़ तथा वर्तमान समय में 40,000 करोड़ रह गया है। जुलाई, 2021 में लागू योजना के अंतर्गत केन्द्र ने बिजली सप्लाई की गुणवत्ता व विश्वसनीयता में सुधार के लिए 3,00,000 करोड़ रुपये का भारी निवेश किया है। इसका उद्देश्य डिस्काम की क्षमता बढ़ाना भी है। इसने पूरी ऊर्जा श्रृंखला में प्री–पेड स्मार्ट मीटरिंग आयामों को अनिवार्य किया है जिसमें लगभग 250 मिलियन परिवार भी शामिल हैं। इसके परिणामस्वरूप एटीएंडसी नुकसान 2020–21 में 22.32 प्रतिशत की तुलना में 2022–23 में 13.5 प्रतिशत रह गया।
लेकिन केन्द्रीय ऊर्जा मंत्री आर.के. सिंह के अनुसार आज भी 15 प्रतिशत बिजली चोरी होती है। इस बिजली पर डिस्काम को कोई पैसा नहीं मिलता है। लक्षित एचएच व किसानों द्वारा उपभोग की जाने वाली बिजली की प्रतिपूर्ति का वादा राज्य सरकारों ने किया था। लेकिन वे इसका पूरा भुगतान नहीं करती हैं और इसका आंशिक भुगतान भी बहुत विलंब से होता है। इस भुगतान के लिए भी राज्य सरकारों को कर्ज लेना पड़ता है। इस प्रकार कर्ज का दुष्चक्र चलता रहता है। जब तक डिस्काम को राज्यों के नियंत्रण से मुक्त कर उनको अपनी कीमतें तथा वितरण नीतियां तय करने का अवसर नहीं दिया जाएगा तब तक यह स्थिति बनी रहेगी। यदि राज्य कुछ एचएच व किसानों को मुफ्त बिजली देना चाहती हैं तो इसका भुगतान उनको सीधे उपभोक्ताओं को करना चाहिए। इससे बिजली वितरण का वि–नियमन होगा, उपभोक्ताओं को अपनी आवश्यकतायें पूरी करने के अनेक विकल्प मिलेंगे तथा बिजली दरों में कमी आएगी।

राहुल गांधी को वायनाड ही रास आया!

"रिपोर्ट वायनाड के मतदाताओं के वर्गों से बात करने के बाद तैयार की गई थी, जो इस बात पर एकमत थे कि राहुल गांधी को वायनाड से ही चुनाव लड़ना चाहिए।"

कुमार चेलप्पन
(लेखक, दि पायनियर के विशेष संवाददाता हैं)

यहां तक कि जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उस लोकसभा क्षेत्र के बारे में आधी रात को तैयारी कर रही थी जहां से राहुल गांधी इस बार चुनाव लड़ेंगे, द पायनियर ने खबर दी है कि नेहरू–गांधी खानदान का वंशज वायनाड नहीं छोड़ेगा जहां से वह भारी बहुमत से चुने गए थे। आम चुनाव के 2019 संस्करण में चार लाख वोट। यह रिपोर्ट वायनाड निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं के विभिन्न वर्गों से बात करने के बाद तैयार की गई थी, जो इस बात पर एकमत थे कि राहुल गांधी को वायनाड से ही चुनाव लड़ना चाहिए।

जिन लोगों ने उनसे पूछे गए प्रश्नों पर प्रतिक्रिया व्यक्त की, उनमें कट्टर सीपीआई (एम) सदस्य और कार्यकर्ता शामिल थे, जिन्होंने यह बताया कि राहुल को 2019 के चुनाव की तुलना में बहुत बड़ा बहुमत दर्ज करना चाहिए क्योंकि प्रतिद्वंद्वी सीपीआई के एनी राजा और के सुरेंद्रन थे। बीजेपी का. सीपीआई के राष्ट्रीय महासचिव डी राजा की पत्नी एनी ने मुख्यमंत्री पिनाराई विजयन को गलत तरीके से परेशान किया था और सीपीआई (एम) कैडर इसे एक बड़ा पाप मानते हैं। राजा ने भी सार्वजनिक रूप से विजयन की क्षमता पर सवाल उठाया था और इससे सीपीआई (एम) कार्यकर्ता नाराज हो गए थे।

यदि कांग्रेस या भाजपा नेताओं ने विजयन की आलोचना की होती, तो उन्हें कोई परेशानी नहीं होती, लेकिन सीपीआई ने लक्ष्मण रेखा (यह स्टालिनवादी रेखा हो सकती है क्योंकि कॉमरेड रामायण को स्वीकार नहीं करते हैं) पार कर ली है। सीपीआई (एम) के साथी निश्चित रूप से एनी राजा को राजनीति की कला में एक या दो सबक सिखाएंगे। सच तो यह है कि सीपीआई (एम) नेता चाहते थे कि राहुल गांधी वायनाड से चुनाव लड़ें ताकि सीपीआई को एक सीट का नुकसान हो जाए। भाजपा के केरल प्रदेश अध्यक्ष सुरेंद्रन को मैदान में उतारने का निर्णय बहुत बाद में किया गया। सुरेंद्रन खुद जानते हैं कि वह बड़े अंतर से हारेंगे लेकिन उन्हें

पार्टी लाइन का पालन करना होगा। बीजेपी दफ्तर से खबर आ रही है कि जमानत जब्त होने पर भी उन्हें राज्यपाल पद दिया जा सकता है. केरल बीजेपी में राहुल गांधी और कांग्रेस के वर्चस्व को चुनौती देने के लिए कोई उपयुक्त उम्मीदवार नहीं हैं. वायंड के मतदाताओं द्वारा यह सवाल पूछा जा रहा है कि कितने लोगों को 2019 में राहुल गांधी को चुनौती देने वालों के नाम याद हैं।

दिलचस्प बात यह है कि गांधी के वायनाड से नामांकन दाखिल करने के साथ ही सीपीआई (एम) और कांग्रेस के बीच दुश्मनी काफी कम हो गई है। हालांकि कांग्रेस नेता सीपीआई (एम) की आलोचना करते हैं, लेकिन यह इन पार्टियों के कट्टर सदस्यों को यह समझाने का एक दिखावा मात्र है कि उनके बीच कोई गठबंधन नहीं है। लेकिन राज्य के लोग टीवी चैनलों और अखबारों में जो देखते हैं, वह सीताराम येचुरी और डी राजा की राहुल गांधी को गले लगाने और चूमने की वीडियो छवियां और तस्वीरें हैं, जबकि त्रिपुरा में पूर्व सीपीआई (एम) मुख्यमंत्री माणिक सरकार खुलेआम कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवारों के लिए प्रचार कर रहे हैं।

केरल एकमात्र राज्य है जहां वे ऐसे व्यवहार करते हैं मानो वे प्रतिद्वंद्वी और दुश्मन हों। अगले चुनाव तक, कोई केरल में भाजपा के नेतृत्व वाले मोर्चे के खिलाफ कांग्रेस और सीपीआई (एम) को एक साथ लड़ते हुए देख सकता है (बशर्ते हिंदुत्व पार्टी का नेतृत्व अपनी टोकरी से सभी सड़े हुए अंडे बाहर निकाल दे)। आज की तारीख में कांग्रेस और सीपीआई (एम) में कोई अंतर नहीं है। राजनीतिक पंडित दोनों पार्टियों से संबंधों को आधिकारिक तौर पर वैध बनाने के लिए कह रहे हैं ताकि पूरे देश में सांप्रदायिक और फासीवादी ताकतों के खिलाफ सभी धर्मनिरपेक्ष दलों को कांग्रेस के झंडे के नीचे खड़ा किया जा सके। धर्मनिरपेक्ष पार्टियों में मुस्लिम लीग भी शामिल है! मार्क्सवादी भाषा में, वे कहते हैं कि जो कोई भी सीपीआई (एम) के साथ जुड़ता है वह धर्मनिरपेक्ष है जबकि भाजपा सांप्रदायिक और फासीवादी है। एक बार जब वे भाजपा के साथ सुविधा का विवाह तोड़ देते हैं तो सीपीआई (एम) को एनडीए के पूर्व घटकों को सहयोगी के रूप में स्वीकार करने में कोई समस्या नहीं होती है। आंध्र प्रदेश के तेलुगु देशम, उड़ीसा के बीजेडी, बीएसपी और जेडी (यू) कुछ प्रमुख राजनीतिक संगठन हैं जिनकी धर्मनिरपेक्षता की साख भाजपा के साथ उनके संबंधों पर निर्भर करती है।

9 अप्रैल 2024 को तिरुवनंतपुरम में कांग्रेस के भीष्म पितामह ए के एंटनी द्वारा संबोधित प्रेस बैठक इस बात का संकेतक थी कि केरल में राजनीतिक विवाह कैसे होते हैं। जब एंटनी अपने बेटे अनिल एंटनी को कोस रहे थे, जो भाजपा उम्मीदवार के रूप में पथानमथिट्टा से चुनाव लड़ रहे हैं और मतदाताओं से उनके बेटे की हार सुनिश्चित करने के लिए कह रहे थे, तो वह कांग्रेस उम्मीदवार एंटो एंटनी पर वाक्पटुता कर रहे थे, जो अनिल के खिलाफ खड़े हैं। पूर्व रक्षा मंत्री ने भाजपा को राष्ट्र–विरोधी, सांप्रदायिक और तानाशाह बताया। लेकिन जो बात सामने आई वह सीपीआई (एम) उम्मीदवारों पर उनकी चुप्पी थी। एंटनी के सीपीआई (एम) के साथ संबंध कुख्यात हैं क्योंकि वह 1980–1983 के दौरान लगभग दो वर्षों तक मार्क्सवादियों के साथ रहे थे। सीपीआई (एम) और एंटनी के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने 1980 का आम चुनाव एक साथ लड़ा और लगभग दो वर्षों तक केरल पर शासन किया। सीपीआई (एम) ने कांग्रेस गुट को एलडीएफ से बाहर कर दिया, जिसने राज्य भर में कांग्रेस के कार्यालयों को ध्वस्त कर दिया और पुलिस दूसरी तरफ देखती रही। यह अकारण नहीं है कि राजनीतिक पंडित कहते हैं कि राजनीति अजनबी लोगों को हमबिस्तर बना देती है। क्या हमें ए के एंटनी से ज्यादा सबूत की जरूरत है?

आप की बात

कम मतदान

लोकसभा चुनाव के पहले चरण में लगभग 60 प्रतिशत मतदान हुआ जो 2019 की तुलना में काफी कम है। हालांकि, इसके पीछे मौसम का असर, मतदाताओं का बाहर होना, वोटरलिस्ट में नाम न आना, जरुरी काम तथा कुछ लोगों का रूचि न लेना आदि कारण हो सकते हैं। लेकिन मतदाताओं का बड़ी संख्या में वोट न डालना सभी राजनीतिक दलों तथा निर्वाचन आयोग की चिंता का विषय होना चाहिए। लोकतंत्र को मजबूत करने और नई दिशा देने के लिए मतदाताओं का जागरूक रहना बहुत आवश्यक है। सैकड़ों राजनीतिक पार्टियों और निर्दलीयों का होना भी मतदान पर विपरीत असर डाल सकता है। देश में लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए अमेरिका आदि देशों की तरह दो प्रमुख पार्टियां होनी चाहिए। लेकिन इसे ऊपर से थोपा नहीं जा सकता है। यदि देश में लोकसभा, विधानसभा तथा स्थानीय निकायों के चुनाव एक साथ हों, यानी एक देश एक चुनाव हो तो गैर–जिम्मेदार व निहित स्वार्थी राजनीतिक दलों की संख्या में कमी आएगी। देश भर में मतदाता सूचियों को दोषमुक्त बनाने, सभी नागरिकों को आनलाइन उपलब्ध कराने तथा फर्जी मतदाताओं के नाम कटवाने की व्यापक व्यवस्था से भी नागरिकों की सहभागिता व मतदान प्रतिशत बढ़ाने में सहायता मिल सकती है।

–**शकुंतला महेश नेनावा,** इंदौर

अपराध न्याय कानून

देश में तीन नए अपराध न्याय कानूनों की प्रशंसा भारत के प्रधान न्यायाधीश न्यायमूर्ति डी वाई चंद्रचूड़ ने भी की है। उन्होंने इसे युगांतकारी बताया है। ये तीन कानून सिस्टम का कायापलट कर सकते हैं। चीफ जस्टिस के पुरजोर समर्थन से केंद्र सरकार द्वारा लागू नए कानूनों के प्रति देश.के आमजनों के विश्वास में बढ़ोतरी होगी और इसके लिए तथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा उठाई गई शंकाएं निरर्थक साबित होगी। कानूनों में निरंतर सुधार और गैर जरूरी कानूनों को समय–समय पर हटाने से देश की जनता को व्यर्थ की उलझनों से बचाया जा सकता है। देश में भारी संख्या में विचाराधीन मामलों के कारण बहुत मामूली सी कानूनी या तकनीकी त्रुटि के कारण भी लोगों को को कोर्ट तक घसीटना सरसार अन्याय है। यही भ्रष्टाचार का मूल स्रोत भी है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस–एआई को कानूनी मान्यता देकर आधिकारिक शासकीय कार्य और दस्तावेज ऑनलाइन प्राप्त करने की सुविधाएं बढ़ाई जाए। कर्मचारियों को उनकी लापरवाही व सुस्ती के लिए दंड भी दिया जाना चाहिए। मध्य प्रदेश सरकार ने रजिस्ट्री होते ही स्वत: इसके नगर निगम व पंचायत में दर्ज होने का स्वागत योग्य नियम बनाया है।

–**सुभाष बुड़ावन वाला,** रतलाम

महिला-विरोधी टिप्पणी

चुनावी माहौल में नेताओं की जुबान फिसल जाती है और इसका खामियाजा भी भुगतान पड़ता है। बिहार में तेजस्वी यादव की एक रैली में चिराग पासवान की मां और दिवंगत रामविलास पासवान की पत्नी के बारे में एक व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक अपशब्द बेहद शर्मनाक, निंदनीय और बर्दाश्त के बाहर हैं। हालांकि, तेजस्वी यादव ने इस प्रकरण पर सफाई दी है लेकिन वह आसानी से गले नहीं उतरती है। बिहार के उप–मुख्यमंत्री सम्राट चौधरी ने भी इस घटनाक्रम की घोर निंदा की है। दु:ख की बात है कि राजनीतिक उठापटक में गलत संदर्भ देने व मां, बेटी, बहन को बीच में लाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। सभी दलों को सोचना होगा कि मातृशक्ति का अपमान, अपशब्द और अभद्रता का राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। महिला–विरोधी टिप्पणी के लिए चुनाव आयोग ने कांग्रेस प्रवक्ता रणदीप सुरजेवाला के चुनाव प्रचार पर 48 घंटे रोक लगाई थी। लेकिन इसके बावजूद राजनेता सुधरने का नाम नहीं ले रहे हैं। नेताओं को अपने समर्थकों को भी अनर्गल बयानबाजी व गालीगलौज की भाषा से विरत रहने की सलाह देनी चाहिए, नहीं तो उनको इसका चुनावी खामियाजा भुगतना पड़ सकता है।

–**वीरेंद्र कुमार जाटव,** दिल्ली

खतरनाक गेम

अमेरिका में मार्च में एक भारतीय छात्रा की मृत्यु हो गई थी। पता चला है की छात्रा ने एक गेम खेलते हुए अपनी जान दे दी थी। आशंका थी की मौत के पीछे ब्लू व्हेल चैलेंज गेम हो सकता है जिसे सुसाइड गेम भी कहा जाता है। इस ऑनलाइन गेम में प्रतिभागियों को एक चैलेंज दिया जाता है। इस चैलेंज के अनुसार छात्रा ने 2 मिनट तक सांस रोक रखी थी। भारत के लिए ब्लू व्हेल गेम से मौत की यह पहली घटना हो सकती है। इस गेम का बच्चों पर काफी समय तक मानसिक असर रहता है। इसके भय से वह काफी गुमसुम एवं लोगों से दूर रहने लगता है। भारत में कई साल पहले ब्लू व्हेल गेम पर प्रतिबंध की बात चली थी परंतु केवल एक एडवाइजरी जारी कर मामला छोड़ दिया गया था। 2017 में जारी एडवाइजरी में कहा गया था की यह आत्महत्या के लिए उकसाने वाला गेम है और बच्चों को इससे दूर रहने की सलाह दी गई थी। केंद्र सरकार को इस तथा इस जैसे गेमों पर प्रतिबंध लगाने के साथ ही इनके प्रचार में प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग करने वाली एजेंसियों के मालिकों पर भी भारी जुर्माने व सजा का प्राविधान करना चाहिए।

– **एमएम राजावत,** शाजापुर

पाठक अपनी प्रतिक्रिया ई–मेल से responsemail.hindipioneer@gmail.com पर भी भेज सकते हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 17 अंक 57

मजबूत हो निवेश संस्कृति

सरकार विश्व बैंक के नए बिजनेस रेडी (बी-रेडी) सूचकांक के लिए तैयारी में लग गई है जो अब बंद हो चुके कारोबारी सुगमता सूचकांक का स्थान लेगा। इससे पता चलता है कि सरकार आर्थिक वृद्धि के लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) पर नए सिरे से जोर देने के लिए तैयार है। बी-रेडी सूचकांक का लक्ष्य 180 देशों को शामिल करने का है और इसे सितंबर 2025 में शुरू किया जाना है। भारत में इसका सर्वे वर्ष की दूसरी छमाही में होगा। उसके पहले उद्योग एवं आंतरिक व्यापार संवर्द्धन विभाग प्रमुख मंत्रालयों के साथ महीने में दो बार बैठकें कर रहा है ताकि यह आकलन कर सके कि बी-रेडी की प्रश्नावली में शामिल 1,300 से अधिक प्रश्नों के लिहाज से हालात कैसे हैं।

व्यापक स्तर पर देखें तो कुछ बी-रेडी संबद्ध सूचकांकों को राज्यों की कारोबारी सुधार कार्य योजना में शामिल करने की योजना है। यह एक स्वस्थ और सक्रियता भरा रुख है जिसकी मदद से कारोबारी सुगमता की दिक्कतों को हल किया जा सकता है और जिन्होंने हाल के वर्षों में सीमित एफडीआई आवक के साथ बहुत सीमित नतीजे प्रदान किए हैं।

ऐपल एक अपवाद है जिसके लिए सरकार की प्रोत्साहन से संबद्ध प्रोत्साहन योजना में कुछ अपेक्षित बदलाव किए गए, उसके अलावा इस बात के बहुत कम प्रमाण हैं कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने देश में विनिर्माण के बड़े केंद्र स्थापित किए हों। चीन प्लस वन (निवेश के लिए चीन के अलावा एक और देश का चयन) की रणनीति के कारण देश में विनिर्माण बढ़ना अपेक्षित है लेकिन अभी यह फलीभूत नहीं हुआ है। ऐपल के दो वेंडर विस्ट्रॉन और पेगाट्रॉन ने भारत से दूरी बना ली है। यद्यपि कहा जा रहा है कि आईफोन बनाने वाली पेगाट्रॉन का निर्णय वैश्विक स्तर पर ऐपल के कारोबार से दूरी बनाने की प्रक्रिया का हिस्सा है जबकि विस्ट्रॉन का बाहर जाना आपूर्ति श्रृंखला और श्रम नीतियों के प्रबंधन की दिक्कतों को दर्शाता है। भारत के विनिर्माण क्षेत्र में ये दोनों दिक्कतें लंबे समय से हैं। नीतिगत डिजाइन और निवेशकों की अपेक्षाओं ने भी परियोजनाओं को प्रभावित किया है। वियतनाम की इलेक्ट्रिक वाहन निर्माता कंपनी विनफास्ट के तमिलनाडु के तूत्तुकोडि में दो अरब डॉलर के निवेश को लेकर बनी अनिश्चितता इसका उदाहरण है। कंपनी को लग रहा है कि उसने जो सब्सिडी चाही थी वह उसके विनिर्माण शुरू करने तक समाप्त हो जाएगी। सरकार ने कहा है कि ये तभी हासिल होगी जब नीति लागू होगी।

इस तरह की नीतिगत अनिश्चितता अक्सर सूचकांकों में नहीं नजर आती है जो प्रायः कुछ खांचों में निशान लगाने की कवायद होते हैं और जिन्हें सरकारें वैश्विक निवेशकों की तुलना में अधिक गंभीरता से लेती हैं। उदाहरण के लिए 2019 में दिवालिया संहिता लागू करने के बाद भारत को सूचकांक में 14 अंकों की उछाल हासिल हुई थी क्योंकि माना गया था कि इससे कारोबारों से बाहर निकलना आसान होगा। परंतु इससे कारोबारी सुगमता से जुड़ी वास्तविक दिक्कतों पर कोई असर नहीं हुआ। अर्थशास्त्र के विद्वानों ने बहुत पहले कारोबारी सुगमता सूचकांक को लेकर इसे रेखांकित किया था। आखिरकार 2021 में इससे छेड़छाड़ के आरोपों के बीच विश्व बैंक को इसे बंद करना पड़ा था। विश्व बैंक का कहना है कि बी-रेडी सूचकांक का कहीं अधिक व्यापक कारकों से वास्ता होगा, खासकर निजी क्षेत्र में और वह कारोबारी सुगमता मानकों से आगे जाकर गुणात्मक आकलन मसलन नियामकीय गुणवत्ता, कर्मचारियों और माहौल को शामिल करेगा। ये किसी अर्थव्यवस्था के निवेश माहौल के अधिक विश्वसनीय और मजबूत संकेतक साबित हो सकते हैं परंतु जहां तक भारत की बात है तो एक ऐसी अर्थव्यवस्था नजर आ सकती है जहां लाइसेंस राज की छाया निवेश और आर्थिक गतिविधियों की संस्कृति पर मंडरा रही है। सबसे निचले कारखाना निरीक्षक से लेकर सर्वोच्च स्तर पर नीति निर्माता तक यही स्थिति है। संरक्षणवाद और उदारवाद के बीच झूलने के कारण विश्व की बड़ी कंपनियों को स्थिरता का संकेत नहीं मिलता है। विश्व स्तर पर एक विश्वसनीय निवेश केंद्र बनने के लिए भारत को राज्य और केंद्र स्तर पर अपनी नीतियों को सुसंगत बनाना होगा और उन्हें राजनीति तथा नीतिगत अनिश्चितता से बचाना होगा।

डिजिटल दुनिया में प्रतिस्पर्धा प्रबंधन

डिजिटल दुनिया में प्रतिस्पर्धा का प्रबंधन करना आसान नहीं है। इन क्षेत्रों में पारंपरिक आर्थिक सिद्धांत भी काम नहीं करते। विस्तार से बता रहे हैं अजय कुमार

डिजिटल क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा को हल करना सरकारों और नियामकों के लिए एक बड़ी चुनौती है। भौतिक दुनिया में जहां नेटवर्क प्रभाव सीमित होता है, वहीं डिजिटल उत्पाद और सेवाएं अक्सर मजबूत नेटवर्क प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। साधारण शब्दों में कहें तो नेटवर्क प्रभाव तब उत्पन्न होता है जब हर नया उपयोगकर्ता अन्य सभी लोगों के लिए पेशकश का मूल्यवर्द्धन करता है। दूरसंचार इसका शानदार उदाहरण है। नेटवर्क प्रतिस्पर्धा और किफायत के पारंपरिक अर्थशास्त्र को धता बताते हैं। इसके बजाय वे ऐसा परिदृश्य रचते हैं जहां सब कुछ विजेता का होता है। इससे एकाधिकार की परिस्थिति पैदा होती है। नेटवर्क उद्योग के इस गुण को पहचानते हुए ही करीब 100 वर्ष पहले एटीऐंडटी ने टेलीफोनी को एक स्वाभाविक एकाधिकार के रूप में परिभाषित किया था। गूगल सर्च, माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस, ऐंड्रॉइड ओएस, गूगल और ऐपल प्ले स्टोर, व्हाट्सऐप और फेसबुक आदि नेटवर्क अर्थव्यवस्था के उत्पादों का उदाहरण हैं जो लगभग एकाधिकार जैसी स्थिति रचते हैं।

पारंपरिक आर्थिक सिद्धांत कहते हैं कि प्रतिस्पर्धा से कीमतों में कमी आती है और गुणवत्ता में सुधार होता है इसलिए उपभोक्ताओं के लिए यही बेहतर है। एक नेटवर्क अर्थव्यवस्था में जब नेटवर्क से बहुत अधिक उपयोगकर्ता जुड़ जाते हैं तो हर उपयोगकर्ता के मूल्य में वृद्धि होती है और समग्र रूप से सामाजिक कल्याण में सुधार होता है। बहरहाल ताकत चुनिंदा मुनाफा कमाने वाली संस्थाओं के पास केंद्रित रहती है जिससे जोखिम उत्पन्न होता है। इसमें राजनीतिक और सामाजिक ढांचे को अस्थिर करने की संभावना भी होती है।

ऐतिहासिक रूप से देखें तो नेटवर्क प्रभाव को टेलीफोन, टेलीग्राफ, रेलवे और डाक सेवाओं जैसी तकनीकों में चिह्नित किया गया लेकिन ये मिलकर अर्थव्यवस्था का बहुत छोटा हिस्सा तैयार करते थे। डिजिटलीकरण ने सकल घरेलू उत्पाद में नेटवर्क अर्थव्यवस्था की हिस्सेदारी में इजाफा किया है। यह रुझान लगातार बढ़ रहा है। नेटवर्क का विस्तार होने तथा भारी उपयोगकर्ता आधार हासिल करने के बाद उनकी पेशकश सार्वजनिक प्रकृति की हो जाती है, भले ही उन पर निजी नियंत्रण होता है। इसके अहम नीतिगत प्रभाव होते हैं। इसके परिणामस्वरूप नेटवर्क प्रभाव की आर्थिक हकीकत को समझना अनिवार्य हो गया है।

वित्तीय मामलों पर संसद की स्थायी समिति तथा कंपनी मामलों के मंत्रालय द्वारा गठित डिजिटल प्रतिस्पर्धा कानून संबंधी समिति दोनों ने एक कानून की अनुशंसा की है जो प्रमुख डिजिटल कंपनियों के बीच बढ़ते गैर-प्रतिस्पर्धी व्यवहार से उपजी चुनौतियों से निपटने की कोशिश कर सके। उदाहरण के लिए उत्पादों को मौजूदा नेटवर्कों से जोड़ना या उनमें शामिल करना, खुद को प्राथमिकता देना, किसी तीसरे पक्ष के उत्पादों को रोकना, डेटा का एकाधिकार के लिए इस्तेमाल करना, ई-कॉमर्स में भारी छूट, विशिष्ट गठजोड़ तथा प्रतिस्पर्धा विरोधी विज्ञापन नीतियां। उनका कहना सही है कि ऐसा व्यवहार प्रमुख कंपनियों के दबदबे को बल देता है और वर्तमान कंपनियों के पक्ष में ध्रुवीकरण करता है। डिजिटल क्षेत्र की तेज प्रकृति को देखते हुए उन्हें लगा कि बाद में कदम उठाना अपर्याप्त है और उन्होंने पहले कदम उठाने की वकालत की।

एक मसौदा विधेयक टिप्पणियों के लिए पेश किया गया। इस विधेयक तथा यूरोपीय संघ के डिजिटल मार्केट्स ऐक्ट, 2022 में कुछ समानताएं हैं। यूरोपीय संघ ने प्रमुख ऑनलाइन प्लेटफॉर्मों को निगरानी की जिम्मेदारी दी है और ऐसे नियमन प्रस्तावित किए हैं जो खुद को प्राथमिकता देने, तीसरे पक्ष की पहुंच को बाधित करने और प्लेटफॉर्म के अन्य उत्पादों के साथ काम करना सुनिश्चित करने जैसे व्यवहार को रोक सकें। ऐसे नियमन के प्रस्ताव ने इन चिंताओं को जन्म दिया है कि कहीं नियामकीय माहौल प्रतिबंधात्मक लाइसेंस और इंस्पेक्टर राज की तरह न हो जाए, यानी कहीं इस क्षेत्र की स्वायत्तता पर बुरा असर न पड़े। सरकार ने 20वीं सदी में दूरसंचार क्षेत्र के नेटवर्क प्रभाव को पहचाना और इस क्षेत्र का नियमन किया ताकि निजी एकाधिकार कायम न हो तथा कई कारोबारी बाजार में नजर आएं। जो उपाय किए गए उनमें लाइसेंसिंग, क्षेत्रों का बंटवारा और कीमतों का नियमन आदि शामिल थे। वैश्विक स्तर पर नियमन का खाका तय करने वाला अंतरराष्ट्रीय दूरसंचार संघ भी सरकारों के नेतृत्व वाला है। कुछ उपाय मसलन साझा मानक और परस्पर संचालन आदि जहां लाभदायक थे, वहीं अन्य मानक इस क्षेत्र में एकाधिकार का उभार रोकने में नाकाम रहे।

भारत का अनुभव जानकारीपरक है। शुरुआत में हमारे यहां दूरसंचार क्षेत्र में सरकार का एकाधिकार था। 1994 में इस क्षेत्र को निजी क्षेत्र के लिए खोला गया लेकिन समय के साथ इसमें दो कंपनियों का दबदबा कायम हो गया। अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस, संयुक्त अरब अमीरात और सिंगापुर में भी यही हाल है। नियमन के कारण इस क्षेत्र में नवाचार में कमी आई और 100 वर्ष से अस्तित्व में होने के बाद भी टेलीफोन कॉल महंगी रहीं और इन तक पहुंच कम। विनियमित कीमतों के कारण तयशुदा प्रतिफल मिलने लगा और उसमें इजाफा हुआ।

कंपनियों ने नवाचार के बजाय अपने कारोबार को बचाने को प्राथमिकता दी और नई कंपनियों के लिए अवरोध खड़े किए। इंटरनेट का मामला इससे एकदम उलट रहा। वह सबसे बड़े नेटवर्क प्रभाव वाला क्षेत्र है। इसे गैर लाभकारी निजी उपक्रम के रूप में विकसित किया गया था। इसने न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप के साथ ओपन नेटवर्क को प्राथमिकता दी। टीसीपी, आईपी जैसे खुले मानकों के साथ इसके संचालन फ्रेमवर्क में कई अंशधारक मसलन उद्योग, अकादमिया, सरकार और नागरिक समाज शामिल हैं। अंशधारकों का कोई पदानुक्रम नहीं है और सरकार सहित सभी समान स्तर पर मौजूद हैं। अपने 30 साल से अधिक के इतिहास में इंटरनेट ने कई नवाचार किए हैं। उसने डिजिटल अर्थव्यवस्था में इसकी बदौलत तेज वृद्धि आई। एकाधिकार के बावजूद इंटरनेट ने वैश्विक अर्थव्यवस्था और सामाजिक प्रगति को गति दी है। जब कुछ अंशधारक निर्णय प्रक्रिया पर दबाव बनाते हैं तो बहु अंशधारक व्यवस्था उन्हें बेअसर करती है।

किसी नेटवर्क अर्थव्यवस्था के लिए नेटवर्क प्रभाव अनिवार्य हैं और इन संदर्भों में पारंपरिक अर्थशास्त्र विफल हो जाएगा। दूसरा, सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार खासकर उदार लोकतांत्रिक देशों में ऐसा एकाधिकार कोई हल नहीं है क्योंकि वे नवाचार और किफायती संसाधन उपयोग में पीछे रहते हैं। इससे उपभोक्ता कल्याण में कमी आती है।

सरकार संचालित नियमन एकाधिकार को रोक पाने में नाकाम रहते हैं क्योंकि वर्तमान कंपनियां नियमन को प्रभावित करने लगती हैं। सरकार के संचालन में निर्णय प्रक्रिया परिपूर्ण नहीं हो पाती क्योंकि वे अनदेखे अवसरों की समझ नहीं रखतीं। एकाधिकार रोकने के लिए नियमन जरूरी हैं लेकिन उपभोक्ता कल्याण और नवाचार भी आवश्यक है।

कहते हैं कि हर समस्या में ही उसका हल छिपा होता है। इंटरनेट का संचालन मॉडल ही नेटवर्क अर्थव्यवस्था की चुनौतियों को हल करने का वैकल्पिक मॉडल सुझाता है। इसी प्रकार सरकारें नेटवर्क अर्थव्यवस्था के उत्पादों के संचालन के लिए सांविधिक प्रणाली बना सकती हैं। उसमें सभी अंशधारक समान होंगे। निगरानी करते हुए सरकारें सीधे हल सुझाने से बच सकती हैं। हालांकि राष्ट्रीय सुरक्षा, संप्रभुता या जनहित के मामलों को देखते हुए वे कुछ अधिकार अपने पास रख सकती हैं। ऐसा रुख न्यूनतम सरकार अधिकतम शासन के विचार के अनुरूप भी होगा और डिजिटल नेटवर्क अर्थव्यवस्था में आमूलचूल बदलाव का अवसर देगा।

(लेखक भारत के पूर्व रक्षा सचिव और आईआईटी कानपुर के विशिष्ट अतिथि प्राध्यापक हैं)

कंक्रीट के जंगल और सिलिकन वैली से जुड़े भ्रम

सिलिकन वैली की कहानी आज के दौर के उद्यमियों को बहुत आकर्षित करती है। यह कहानी प्रतिभा, कल्पनाशीलता, सृजनात्मकता और लगन का प्रतीक है। साथ ही यह शहरों को अवसरों के केंद्र में बदलने का प्रतीक है। यह एक आर्थिक विकास का खाका होने के साथ-साथ उद्यमशीलता के बढ़ने से पैदा होने वाली सामाजिक चुनौतियों को भी दर्शाता है। सैन फ्रांसिस्को के लिए, सिलिकन वैली नवाचार, तकनीक और मानव प्रगति में उत्कृष्टता हासिल करने का प्रतीक है।

हालांकि इसकी विडंबना तब सामने आती है जब वादे की इस सरजमीं पर बेघरों और गरीबी बढ़ने का मुद्दा बढ़ने लगता है। वर्ष 2024 के सिलिकन वैली इंडेक्स के मुताबिक सिलिकन वैली (केवल सैन मेटो और सैंटा क्लारा काउंटी) के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की हिस्सेदारी 12.1 प्रतिशत थी जबकि कैलिफोर्निया के कुल जीडीपी में सैन फ्रांसिस्को की हिस्सेदारी केवल 5.4 प्रतिशत थी। हालांकि रिपोर्ट से सिलिकन वैली में आमदनी और संपत्ति की बढ़ती विषमता का अंदाजा मिलता है। शीर्ष 10 प्रतिशत परिवार 70 प्रतिशत सामूहिक संपत्ति पर अपना नियंत्रण रखते हैं जबकि औसत परिवारों की आय मुश्किल से महंगाई के साथ तालमेल बिठा पाती है।

सिलिकन वैली और अमेरिका तथा बाकी दुनिया पर इसके प्रभाव को लेकर सुर्खियां बनी रहती हैं। लेकिन अक्सर इस बात की अनदेखी की जाती है कि इस तरह की घटना का किसी क्षेत्र की व्यापक शहरी गतिशीलता पर क्या प्रभाव पड़ता है। आर्थिक उत्पादकता से परे, संस्कृति में हो रहे बदलाव को समझना, नौकरियों की प्रकृति, श्रम-बल भागीदारी दर, जीने से जुड़ी सुगमता और नगरपालिका के कामकाज के दबाव को समझना महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण के तौर पर वर्ष 2021 में न्यूयॉर्क टाइम्स की एक शीर्षक थी, 'वे बे एरिया को जल्द नहीं छोड़ सकते'। इसमें क्षेत्र के कई तकनीकी स्टार्टअप और इनके कामगारों के स्थानांतरण के बारे में बात की गई थी। इसके लिए जिन वजहों पर जोर दिया गया था उनमें किराये की अत्यधिक दर भी शामिल थी जिसके चलते कामगारों के लिए जीने की बढ़ती लागत का संकट पैदा हो गया था। साथ ही गूगल और मेटा जैसी अमीर और स्थापित दिग्गज कंपनियों के ऊंचे और आलीशान दफ्तरों और बेघरों के लिए बड़ी संख्या में लगाए जा रहे टेंटों के बीच अंतर स्पष्ट था। एक ही जगह पर इस तरह की उत्कृष्टता, भव्यता और भयंकर अभाव निश्चित रूप से इस बात की तहकीकात के लिए प्रेरित करता है कि स्टार्टअप शहरी संकट का हल निकालने के लिए किस तरह के समाधान की पेशकश कर सकते हैं।

अमित कपूर और विवेक देबरॉय

सिलिकन वैली में बेघरों की संख्या बढ़ने का एक मुख्य कारण जीवनयापन की अत्यधिक लागत है। मकान की आसमान छूती कीमतें, अभूतपूर्व स्तर पर पहुंच गई हैं जिससे निम्न स्तर की आमदनी वाले व्यक्तियों और परिवारों के लिए रहने की पर्याप्त जगह लेने का खर्च उठाना मुश्किल होता जा रहा है। जैसे-जैसे तकनीकी कंपनियां अपना विस्तार करती हैं और प्रतिभाओं को अपने यहां काम करने के लिए आकर्षित करती हैं वैसे ही आवास की मांग बढ़ती जाती है जिसके चलते पहले से ही खराब हो रही स्थिति और विकट हो जाती है। इसका नतीजा यह है कि बेघर लोगों की आबादी बढ़ रही है जो इस क्षेत्र में आवास संकट के बीच भी स्थायी आवास खोजने के लिए संघर्ष करती है। सिलिकन वैली में रोजगार की प्रकृति भी इस तरह के हालात बनने के लिए जिम्मेदार है। तकनीकी कंपनियां कुशल श्रमिकों को ज्यादा भुगतान वाली नौकरियां देती हैं लेकिन ये ठेके वाले श्रमिकों और गिग-इकॉनमी श्रमिकों पर भी बहुत अधिक निर्भर होती हैं जिनके पास नौकरी की सुरक्षा और अन्य लाभ नहीं होते हैं। इनमें से कई श्रमिक मुश्किल से अपना गुजारा कर पाते हैं और अनिश्चित जीवन वाली परिस्थितियों के साथ-साथ वित्तीय अस्थिरता का सामना करते हैं। किफायती आवास और पर्याप्त समर्थन वाली प्रणाली न होने के चलते उनके बेघर होने का खतरा बढ़ जाता है। सिलिकन वैली की बेघर आबादी में भी विविधता है और इसमें विभिन्न पृष्ठभूमि और परिस्थितियों वाले लोग शामिल हैं। यहां लंबे समय से रहने वाले निवासियों को इस क्षेत्र में समृद्ध लोगों की बढ़ती आबादी और बढ़ते किराये के कारण बेघर होना पड़ा है। यहां हाल में आए लोगों का आकर्षण इस क्षेत्र में मिलने वाले विशेष अवसरों की उम्मीद के कारण हुआ है लेकिन उन्हें सड़कों पर या अस्थायी आश्रयों में अपना गुजारा करना पड़ रहा है। उनका ताल्लुक चाहे कहीं का भी हो लेकिन वे एक ऐसे क्षेत्र में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए एक-समान संघर्ष साझा करते हैं जो समाज में हाशिये पर रहने वालों के लिए तेजी से आक्रामक हो गया है। हालांकि सिलिकन वैली की कहानी बेहद जानी-पहचानी है और यह सिर्फ इसी तकनीकी केंद्र की कहानी नहीं है। अपने देश में, बेंगलूरु जैसे शहर को ही देखें जिसे अक्सर भारत की सिलिकन वैली कहा जाता है तो यहां जलवायु परिवर्तन के चलते होने वाले संसाधनों की कमी, विशेष रूप से पानी जैसी आवश्यक चीज के संकट के चलते जीवन जीने की बढ़ती लागत का संकट बढ़ रहा है। इसका अर्थ स्टार्टअप की छवि खराब करना नहीं है बल्कि उनके उभार के साथ बढ़ती शहरी असमानता को दर्शाना है। इन समूहों का विस्तार शहरी विकास और समृद्धि का वादा करता है ऐसे में यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि हमारे शहर किफायती हों और ये किफायती चीजों की बढ़ती मांगों की पूर्ति करने में सक्षम हो सकें। इसके लिए स्थान और घनत्व पर विचार करते हुए शहरी नियोजन के मामले टिकाऊ प्रक्रिया पर जोर देने की बात अहम है साथ ही इन शहरों में काम करने वाली कंपनियों द्वारा दिए गए विकल्प के भी टिकाऊ होने आवश्यकता है। इस परिदृश्य में, शहरी नियोजन शहरों के भीतर स्टार्टअप पारिस्थितिकी तंत्र को आकार देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्थान विशेष संगठन, बुनियादी ढांचे का प्रावधान और नियामकीय ढांचा उद्यमशीलता गतिविधि के फलने-फूलने के लिए मंच तैयार करता है। हालांकि, मौजूदा शहरी नियोजन प्रतिमान अक्सर स्टार्टअप वृद्धि की गतिशील प्रकृति के साथ तालमेल बिठाने के लिए जूझता है जिससे अपर्याप्त बुनियादी ढांचे से लेकर अचल संपत्ति की ऊंची कीमतों तक के कई मुद्दे सामने आते हैं।

स्टार्टअप के उभार से पैदा हुई महत्त्वपूर्ण चुनौतियों में से एक शहरी संसाधनों पर उनका बढ़ता दबाव है। जैसे-जैसे ये कंपनियां विस्तार करती हैं, वे बड़ी मात्रा में पानी, बिजली और अन्य चीजों का उपभोग करती हैं जिसके चलते मौजूदा संसाधनों में कमी बढ़ती है। इससे शहरी बुनियादी ढांचे पर दबाव पड़ता है, जिससे सेवा में बाधा आने के साथ ही पर्यावरण क्षरण और जलवायु संबंधी आपदाओं के चलते असुरक्षा बढ़ जाती है। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए, शहरी योजनाकारों को शहरी विकास में टिकाऊपन के सिद्धांतों को एकीकृत करने वाला एक समग्र दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। इसमें मिश्रित उपयोग वाले विकास को बढ़ावा देना, सार्वजनिक परिवहन और स्वच्छ ऊर्जा वाले बुनियादी ढांचे में निवेश करना और ऐसे नियमन लागू करना शामिल है जो स्टार्टअप और अन्य कारोबारों के बीच टिकाऊपन वाले रुझान को प्रोत्साहित करते हैं। इसके अलावा, स्टार्टअप और शहरी नियोजकों के बीच सहयोग को बढ़ावा देने से शहरों से जुड़ी चुनौतियों के लिए नए तरह के समाधान मिल सकते हैं। प्रौद्योगिकी और डेटा-संचालित तरीकों का लाभ उठाकर स्टार्टअप, शहरों को आवंटित किए जाने वाले संसाधन को अनुकूलित करने, सेवा वितरण में सुधार करने और निवासियों के जीवन की समग्र गुणवत्ता बढ़ाने में मददगार साबित हो सकते हैं। वहीं इसके बदले में, शहरी योजनाकार स्टार्टअप को उनकी सफलता के लिए आवश्यक नियामकीय निश्चितता, बुनियादी ढांचा समर्थन और बाजारों तक पहुंच के जरिये मदद दे सकते हैं।

(कपूर इंस्टीट्यूट फॉर कंपीटीटिवनेस, इंडिया के चेयर एवं स्टैनफर्ड यूनिवर्सिटी में व्याख्याता और देबरॉय प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के चेयरमैन हैं। साथ में जेसिका दुग्गल)

आपका पक्ष

न्याय प्रणाली में एआई से काम होगा आसान

देश में नए बने तीन कानूनों की वकालत उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड़ ने भी की है। उन्होंने इसे युगांतकारी बताया है। ये तीन कानून सिस्टम का कायापलट कर सकते हैं। मुख्य न्यायाधीश के पुरजोर समर्थन से केंद्र सरकार द्वारा लागू नए कानूनों के प्रति देश के आम जनों के विश्वास में बढ़ोतरी होगी और इन पर तथाकथित बुद्धिजीवियों की ओर से उठाई गई शंकाएं निर्मूल साबित होंगी। कानूनों में निरंतर सुधार करने और गैर जरूरी कानूनों को समय-समय पर हटाने से देश की जनता को व्यर्थ की उलझनों से बचाया जा सकता है। वैसे भी देश में भारी संख्या में विचाराधीन मामलों के कारण बहुत मामूली सी कानूनी या तकनीकी त्रुटि के कारण व्यक्ति को अदालत तक घसीटना अन्याय है और यही भ्रष्टाचार का मूल स्रोत भी है। अब आर्टिफिशल इंटेलिजेंस को कानूनी मान्यता देकर आधिकारिक शासकीय कार्य और दस्तावेज ऑनलाइन हासिल करने की सुविधाएं बढ़ाई जाए और एक समय सीमा के बाद कर्मचारी के काम को अंजाम नहीं देने पर दंड का प्रावधान किया जाए। मध्य प्रदेश सरकार ने रजिस्ट्री होते ही इसके स्वतः ऑनलाइन नगर निगम और पंचायत में पहुंचकर स्वतः खारिज-दाखिल हो जाने का स्वागत योग्य नियम बनाया है। देश भर में ऐसा ही नियम लागू किया जाना चाहिए। अभी भी हमारे संविधान में समय के हिसाब से कई कानूनों में बदलाव और कमी किए जाने की जरूरत है। इसके लिए सरकार और न्यायपालिका को मिलकर एक समिति नियुक्त करके उसके सुझावों के अनुसार कानूनों का सरलीकरण करना चाहिए!

मधु सुभाष बुड़ावन वाला, रतलाम

कानूनों में सुधार करने और गैर जरूरी कानूनों को समय-समय पर हटाने से जनता को व्यर्थ की उलझनों से बचाया जा सकता है

खतरनाक है ब्लू व्हेल गेम, इस पर लगे प्रतिबंध

अमेरिका में विगत मार्च माह में एक भारतीय छात्र की मृत्यु हो गई थी। उनकी मौत के कारणों का अब पता चला है। छात्र ने एक गेम खेलते हुए अपनी जान दे दी थी। तब ऐसी आशंका व्यक्त की गई कि मौत के पीछे ब्लू व्हेल चैलेंज गेम हो सकता है। इसे सुसाइड गेम भी कहा जाता है। ब्लू व्हेल चैलेंज एक ऑनलाइन गेम है जिसमें प्रतिभागियों को एक चैलेंज दिया जाता है। छात्र ने इस चैलेंज गेम के अनुसार 2 मिनट तक अपनी सांस रोक रखी थी। भारत के लिए ब्लू व्हेल गेम से मौत की यह पहली घटना हो सकती है। इस खेल को काफी खतरनाक कहा जाता है तथा इसका बच्चों पर मानसिक असर काफी समय तक रहता है। इसके भय से बच्चे गुमसुम और लोगों से काफी दूर रहने लगते हैं। भारत में कई साल पहले ब्लू व्हेल गेम पर प्रतिबंध की बात चली थी लेकिन इसके बावजूद केवल एक दिशानिर्देश जारी कर छोड़ दिया गया। वर्ष 2017 में जारी दिशानिर्देशों में कहा गया था कि ब्लू व्हेल आत्महत्या के लिए उकसाने वाला गेम है। इसलिए इससे बच्चों को दूर रहने की सलाह दी गई थी। वर्ष 2015 से 2017 के बीच इसी ब्लू व्हेल गेम की वजह से कई मौतें हो चुकी हैं। अतः केंद्र सरकार इस खेल पर प्रतिबंध लगाए।

एमएम राजावतराज, शाजापुर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो – पीटीआई

रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने सोमवार को दुनिया के सबसे ऊंचे युद्धक्षेत्र सियाचिन का दौरा किया और क्षेत्र में भारत की समग्र सैन्य तैयारी की समीक्षा की। काराकोरम पर्वतीय श्रृंखला में लगभग 20,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित सियाचिन ग्लेशियर दुनिया के सबसे ऊंचे सैन्यीकृत क्षेत्र के रूप में जाना जाता है जहां सैनिकों को शीतदंश और तेज हवाओं से जूझना पड़ता है।